॥ श्री महावीराय नम ॥

॥ जय नानेश ॥ ॥ जय रामेश ॥

जैन संस्कार पाठ्यक्रम
भाग - 2

प्रकाशक :
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग -2

चौदहवां संस्करण - अप्रैल 2022

प्रतियाँ - 5100

मूल्य - रुपये 25/-

अर्थ सौजन्य :-
श्रीमती कुमुददेवी-विमलजी सिपाणी
उदयरामसर/बीकानेर/बेंगलुरु

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर (राज.)
फोन- 0151-2270359, Mob. : 8955461564

आचार्य श्री नानेश ध्यान केन्द्र
पद्मिनी मार्ग राणा प्रताप नगर रोड़ , उदयपुर (राज.)
फोन- 7231833008, 8306062464

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर (राज.)
फोन-0151-2270359, Mob. : 8955461564

मुद्रक
जय गुरु प्रिण्टर्स,
बीकानेर (राज.)
मो. 94141-4 0938, 80036-79009

भूमिका

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही है, जिनमें धार्मिक परीक्षा बोर्ड भी एक है, जो सन् 1974 से ये परीक्षाएँ निरन्तर चल रही हैं, जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसंगों पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता 1008 श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री रामलालजी म.सा. एवं बहुश्रुत वाचनाचार्य उपाध्याय प्रवर श्री राजेशमुनिजी म.सा. से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नए पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई।

अतएव जैन संस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है, जिसमें भाग 1 से 12 तक प्रस्तुत किए गए हैं, जो वर्ष 2003 से निरन्तर गतिमान है। इससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन प्राप्त कर जीवन में कुछ पा सकेंगे, ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एवं सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाया गया है। इसमें 2022 तक के संशोधनों को समाहित किया गया है।

पाठ्यक्रम के संकलन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी श्री संघों एवं चातुर्मासिक क्षेत्रों के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक से अधिक इन परीक्षाओं में भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि में योगदान देवें। इसी शुभेच्छा के साथ-

विनीत

संयोजक - धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर वहाँ परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम – भाग 1 से 12 तक
2. योग्यता – ज्ञानार्जन का अभिलाषी
3. परीक्षा का समय – माह आसोज, बदी पक्ष
4. श्रेणी निर्धारण

   प्रथम श्रेणी – 75% से अधिक

   द्वितीय श्रेणी – 50% से 75%

5. परीक्षा फल – परीक्षा फल का प्रकाशन श्रमणोपासक पत्रिका में तथा परीक्षा केन्द्रों पर उपलब्ध रहेगा।
6. प्रमाण-पत्र – सम्बन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवाये जाएंगे।
7. पारितोषिक – प्रत्येक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा अन्य प्रोत्साहन पुरस्कार।
   - 18 वर्ष से कम उम्र के विद्यार्थियों के लिए
     71% से 100% प्रथम श्रेणी।
     35% से 70% द्वितीय श्रेणी।

परीक्षार्थी ध्यान देवें!

यह धार्मिक परीक्षा ज्ञानार्जन एवं जीवन विकास हेतु है। इसमें नकल करना अथवा पुस्तक आदि देखकर लिखना या पूछकर उत्तर लिखना नियम विरुद्ध है। परीक्षा निरीक्षक अनुशासनात्मक कार्यवाही हेतु अधिकृत है।

अनुक्रम

क्रं.	विषय	पृष्ठ संख्या	अंक 100
I	**सूत्र विभाग**		**35**
	1. सामायिक सूत्र	6	
	2. सामायिक लेने की विधि	28	
	3. सामायिक पारने की विधि	30	
	4. प्रश्न-उत्तर	31	
II	**तत्त्व विभाग**		**25**
	1. जैन सिद्धान्त बत्तीसी के 16 सिद्धान्त	34	
	2. बीस विहरमान (तीर्थंकर)	52	
	3. भगवान महावीर के ग्यारह गणधर	52	
	4. अनमोल शिक्षा	52	
	5. श्रृंगार के 12 बोल	53	
	6. महापापी के 12 बोल	53	
III	**कथा विभाग**		**10**
	1. महासती चन्दनबाला	54	
	2. परम निष्ठावान कामदेव श्रावक	59	
	3. सेवामुर्ति मुनि नन्दीषेण	62	
IV	**काव्य विभाग**		**15**
	1. बारह भावना	65	
	2. साता कीजो जी	67	
	3. आत्म जागरण	67	
V	**सामान्य ज्ञान विभाग**		**15**
	2. सात कुव्यसन	68	
	3. रात्रि भोजन	69	
	4. दोहे-		
	अहिंसा	72	
	वाणी	72	

सूत्र विभाग

सामायिक सूत्र, सार्थ एवं प्रश्नोत्तर

1. नमस्कार मन्त्र

नमो अरिहंताणं ।
नमो सिद्धाणं ।
नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं ।
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंचनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवड़ मंगलं ।।1।।

(श्री कल्पसूत्र मंगलाचरण)

मूल शब्द		**अर्थ**
अरिहंताणं	-	अरिहन्तों को
नमो	-	नमस्कार हो
सिद्धाणं	-	सिद्ध भगवान को
नमो	-	नमस्कार हो
आयरियाणं	-	आचार्य महाराज को
नमो	-	नमस्कार हो
उवज्झायाणं	-	उपाध्याय महाराज को
नमो	-	नमस्कार हो
लोए	-	लोक में (अढाई द्वीप में वर्तमान)
सव्वसाहूणं	-	सभी साधु महाराज को
नमो	-	नमस्कार हो।
एसो	-	यह
पंचनमोक्कारो	-	पंच नमस्कार (पांच परमेष्ठियों को किया हुआ नमस्कार)
सव्वपावप्पणासणो	-	सब पापों का नाश करने वाला है
च	-	और
सव्वेसिं	-	सब
मंगलाणं	-	मंगलों में

पढ़मं	-	प्रथम (प्रधान)
मंगल	-	मंगल
हवइ	-	है।

भावार्थ- श्री अरिहन्त भगवान, सिद्ध भगवान, श्री आचार्य महाराज, श्री उपाध्याय महाराज और अढ़ाई द्वीप में वर्तमान सभी साधु मुनिराज- इन पाँच परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो। उक्त पाँच परमेष्ठियों को किया जाने वाला नमस्कार सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है और सब प्रकार के लौकिक और लोकोत्तर मंगलों में प्रधान मंगल है।

प्रश्न - नमस्कार किसे कहते हैं?

उत्तर - दोनों हाथों को जोड़कर ललाट पर लगाते हुए विनम्र भाव से मस्तक झुकाना।

प्रश्न - मन्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर - 'मननात त्रायते इति मंत्रः' अर्थात् जिसका मनन करने से त्राण (रक्षा) होता है। जिसमें अक्षर थोड़े हों और भाव बहुत हों उसे मन्त्र कहते हैं।

प्रश्न- नवकार मंत्र को महामंत्र क्यों कहा जाता है ?

उत्तर - यह मंत्र सभी पापों का नाश करने वाला है। भौतिक मंत्र जहाँ भौतिक आकांक्षा और रक्षा के लिए प्रयुक्त होता है वहीं नमस्कार मंत्र आत्मा की आध्यात्मिक रक्षा करता है। 'रक्षा' अर्थात् आत्मा को राग, द्वेष, कषाय से विमुक्त रखना। इसी दृष्टिकोण से नमस्कार मंत्र को महामंत्र कहा गया है।

प्रश्न- नवकार मंत्र का स्मरण किन भावों से करना चाहिए ?

उत्तर- नवकार मंत्र के पाँच पदों का स्मरण करते हुए ये भाव हों

1. नमो अरिहंताणं- हे भंते! आपने वीतरागता को प्रकट कर लिया है ऐसी वीतरागता मुझे भी प्राप्त हो, घाती कर्म मुझसे शीघ्र दूर हों।

2. नमो सिद्धाणं- हे भंते! आपने अष्ट-कर्मों को क्षय कर अनंत सुखों को प्राप्त किया है वैसा ही सुख मेरी आत्मा प्राप्त करे।

3. नमो आयरियाणं- हे भंते! जैसा आप शुद्ध ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार का पालन करते हैं, वैसा ही शुद्धाचार में भी पालूँ।

4. नमो उवज्झायाणं- हे भंते! आप आगमों के रक्षक और शिक्षक हैं, जिन आगमों का अध्ययन कराते हैं, मैं भी उनमें कुशल बनूं।

5. नमो लोए सव्वसाहूणं- हे भंते! आप चारित्र आत्माएं समभावपूर्वक अनेक परिषहों और उपसर्गों को सहन कर सभी जीवों को अभयदान प्रदान करते हुए सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना कर रहे हैं। मैं भी आप जैसा संयमी बनूं।

2. गुरु वन्दन सूत्र- (तिक्खुत्तो का पाठ)

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि (णमन् सामि) सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि।

(श्रीमद् रायपसेणी सूत्र 8)

तिक्खुतो	-	तीन बार
आयाहिणं	-	दक्षिण तरफ से
पायाहिणं	-	प्रदक्षिणा
करेमि	-	करता हूँ
वंदामि	-	गुणगान (स्तुति) करता हूँ
णमंसामि	-	नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि	-	सत्कार करता हूँ
सम्माणेमि	-	विशेष सम्मान देता हूँ
कल्लाणं	-	कल्याण रूप
मंगलं	-	मंगल रूप (जिसने अहंकार को गला दिया)
देवयं	-	धर्म देव रूप (दिव्य रूप वाले)
चेइयं	-	ज्ञानवंत अथवा सुप्रशस्त मन के हेतु रूप
पज्जुवासामि	-	पर्युपासना करता हूँ
मत्थएण	-	मस्तक नमाकर
वंदामि	-	वन्दना करता हूँ।

भावार्थ- हे पूज्य! दोनों हाथ जोड़कर दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता हूँ। आपका गुणगान (स्तुति) करता हूँ। पंचांग (दो हाथ, दो घुटने और एक मस्तक ये पाँच अंग) नमाकर नमस्कार करता हूँ, आपका सत्कार करता हूँ, आपको सम्मान देता हूँ, आप कल्याण रूप हैं. मंगलरूप हैं, आप धर्मदेव स्वरूप है, ज्ञानवंत हैं अथवा मन को प्रशस्त बनाने वाले हैं, ऐसे आप गुरु महाराज की सेवा करता हूँ और मस्तक नमाकर आपको वन्दन करता हूँ।

प्रश्न- आदक्षिण प्रदक्षिणा तीन बार क्यों की जाती है ?

उत्तर- मन, वचन और काया से वन्दनीय की पर्युपासना करने के लिए तीन बार आदक्षिणा की जाती है।

प्रश्न- आदक्षिण प्रदक्षिणा किसे कहते हैं ?

उत्तर- दोनों हाथों को जोड़कर वंदनीय के दाएं और अपने बाएं कान से ऊपर की तरफ ले जाते हुए मस्तक के चारों तरफ घुमाना आदक्षिण प्रदक्षिणा (आवर्तन) कहलाता है।

प्रश्न- वंदना तीन बार क्यों की जाती है ?

उत्तर- वन्दनीय में रहे ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना तीन बार की जाती है।

प्रश्न- वंदना किन भावों से करनी चाहिए ?

उत्तर- वंदना करते हुए वंदनीय के निम्न गुणों को सामने रखें और उन गुणों को अपने में प्रवेश कराने का भाव रखें-

पहली वंदना करते हुए ज्ञान की दृष्टि से उनमें जो विशेषता है उन्हें ध्यान में लें कि अहो ! इनके जीवन में कितना ज्ञान है ? ऐसा ज्ञान मेरे भीतर भी आए।

दूसरी वंदना करते हुए उनके दर्शन गुण का अवलोकन करें अर्थात् तीर्थंकर देवों की वाणी पर व गुरु पर उनकी कितनी श्रद्धा है ? ऐसी श्रद्धा मेरे भीतर भी प्रकट होवे।

तीसरी वंदना करते हुए चारित्र के प्रति अहो भाव उत्पन्न करें। अहो ! इनका जीवन कितना पवित्र है। इनके चारित्र की परिपालना कितनी उत्तम है? मैं भी ऐसा निर्मल चारित्र पालुं।

प्रश्न- वंदना से क्या लाभ है ?

उत्तर- 1. वंदना करने से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है और उच्च गोत्र बाँधता है। सभी का प्रिय पात्र बनता है। 2. जीवन में विनय भाव आता है। 3. ज्ञानादि शीघ्र प्राप्त होते हैं। 4. धर्म कार्यों में स्फूर्ति रहती है। 5. पापों का नाश और पुण्य का लाभ होता है। 6. दुर्गुण नष्ट होते हैं और सद्गुण खिलते हैं। 7. एक दिन हम भी वन्दनीय बन जाते हैं।

प्रश्न- सत्कार किसे कहते हैं ?

उत्तर- आप कल्याणरूप हैं, मंगलरूप हैं, देवरूप हैं और ज्ञानवान हैं इस प्रकार अरिहंतादि की स्तुति करना, उनका स्वागत करना सत्कार कहलाता है।

प्रश्न- सन्मान किसे कहते हैं ?

उत्तर- अरिहंतादि के प्रति भक्ति एवं बहुमान प्रकट करना, सन्मान कहलाता है।

प्रश्न- कल्याण और मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर- मोक्ष को प्राप्त कराने वाले को कल्याण कहते हैं तथा पाप रूपी विघ्न को दूर करने वाले को मंगल कहते हैं।

प्रश्न- पर्युपासना किसे कहते हैं, वह कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर- चारों ओर से मन को हटाकर भावों से गुरु के समीप बैठना ही पर्युपासना है। यह तीन

प्रकार की है-

(1) कायिक पर्युपासना- नम्र आसन से हाथ जोड़कर अरिहंतादि के सम्मुख सुनने की इच्छा से बैठना।

(2) वाचिक पर्युपासना- अरिहंतादि जो उपदेश करे, उसे सत्य कहकर स्वीकार करना।

(3) मानसिक पर्युपासना- उपदेश के प्रति अनुराग रखना और पालने की भावना बनाना।

3. इरियावहिया सूत्र (आलोचना सूत्र, इच्छाकारेणं का पाठ)

इच्छाकारेणं संदिसह, भगवं! इरिया-वहियं पडिक्कमामि इच्छं इच्छामि पडिक्कमिउं इरिया वहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा उत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कड़ा संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं।

(हारिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 572)

भगवं	-	हे भगवन् ! हे गुरु महाराज !
इच्छाकारेणं	-	इच्छापूर्वक
संदिसह	-	आज्ञा दीजिये (कि मैं)
इरियावहियं	-	ईयपथिकी क्रिया का (चलने से लगने वाली क्रिया का)
पडिक्कमामि	-	प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ।
इच्छं	-	आपकी आज्ञा प्रमाण है

उद्देश्य-

इरियावहियाए	-	मार्ग में चलने से होने वाली
विराहणाए	-	विराधना से
पडिक्कमिउं	-	प्रतिक्रमण करने की
इच्छामि	-	इच्छा करता हूँ

विराधना किस तरह होती है ?

गमणागमणे	-	जाने आने में
पाणक्कमणे	-	किसी प्राणी को दबाया हो
बीयक्कमणे	-	बीज को दबाया हो

हरियक्कमणे	-	वनस्पति को दबाया हो
ओसा	-	ओस
उत्तिंग	-	कीड़ी नगरा
पणग	-	पाँच रंग की काई (लीलन-फूलन)
दग	-	कच्चा पानी
मट्टी	-	सचित्त मिट्टी (और)
मक्कड़ा संताणा	-	मकड़ी के जालों को
संकमणे	-	कुचला हो
मे	-	मैंने
एगिंदिया	-	एक इन्द्रिय वाले
बेइंदिया	-	दो इन्द्रिय वाले
तेइंदिया	-	तीन इन्द्रिय वाले
चउरिंदिया	-	चार इन्द्रिय वाले
पंचिंदिया	-	पाँच इन्द्रिय वाले
जे	-	जो
जीवा	-	जीव हैं (उन्हें)
विराहिया	-	विराधना (पीड़ित) किया हो

विराधना के दस प्रकार-

01. अभिहया	-	सम्मुख आते हुए को हना हो
02. वत्तिया	-	धूल आदि से ढँका हो
03. लेसिया	-	मसला हो
04. संघाइया	-	इकट्ठा किया हो
05. संघट्टिया	-	संघट्टा (छूआ) किया हो
06. परियाविया	-	परिताप (कष्ट) पहुंचाया हो
07. किलामिया	-	किलामना उपजाई हो,
	-	मृत तुल्य किया हो
08. उद्दविया	-	हैरान या भयभीत किया हो
09. ठाणाओ	-	एक जगह से
ठाणं	-	दूसरी जगह
संकामिया	-	रखा हो
10. जीवियाओ	-	जीवन से
ववरोविया	-	रहित किया हो

प्रतिक्रमण-

तस्स	-	उसका
दुक्कडं	-	पाप, दुष्कृत
मि	-	मेरे लिए
मिच्छा	-	मिथ्या (निष्फल) हो।

भावार्थ- शिष्य गुरु महाराज ! इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिये कि मैं ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करूँ। गुरु की अनुमति पाने पर शिष्य कहता है कि आपकी आज्ञा प्रमाण है। मैं ईयपथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ अर्थात् मार्ग में चलने से हुई विराधना से निवृत्त होना चाहता हूँ। मार्ग में आते जाते किसी प्राणी को दबाया हो, सचित बीज तथा हरी वनस्पति को कुचला हो, ओस, कीड़ी नगरा, पाँचों वर्ण की लीलन-फूलन, सचित जल, सचित्त मिट्टी और मकड़ी के जालों को रौंदा (कुचला) हो। मैंने किन्हीं जीवों की हिंसा की हो जैसे एक इन्द्रिय वाले- पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति, दो इन्द्रिय वाले- शंख, सीप, गिंडोला आदि, तीन इन्द्रिय वाले- कुंथुआ. जूं, लीख, कीड़ी, खटमल, चीचड़ आदि, चार इन्द्रिय वाले- मक्खी, भंवरा, बिच्छु, टिड्डी, पतंगिया आदि, पाँच इन्द्रिय वाले- मनुष्य, तिर्यंच जलचर, स्थलचर और खेचर आदि। सन्मुख आते हुए इन्हें मारा हो, इन्हें धूल आदि से ढँका हो, जमीन पर या आपस में रगड़ा हो, इकट्ठा करके इन्हें दुःख पहुंचाया हो तथा छूकर पीड़ा दी हो। इन्हें क्लेश पहुंचाया हो, मृत तुल्य किया हो। हैरान भयभीत किया हो, एक जगह से दूसरी जगह रखा हो, इनका जीवन नष्ट किया हो, इनसे होने वाले पाप मेरे लिए निष्फल हो अर्थात् जानते अजानते विराधना आदि से कषाय द्वारा मैंने जो पाप कर्म बाँधा हो, उसके लिए मैं हृदय से पश्चाताप करता हूँ, जिससे कि निर्मल परिणाम द्वारा पाप कर्म शिथिल हो जावे और मुझे उसका तीव्र फल भोगना न पड़े।

प्रश्न- इसे आलोचना-पाठ क्यों कहते हैं ?

उत्तर- इससे जीव विराधना की आलोचना की जाती है।

प्रश्न- विराधना किसे कहते हैं ?

उत्तर- व्रत को दूषित करने वाली प्रवृत्ति तथा विधि के अनुसार आचरण नहीं करना विराधना है, जीवों को दुःख पहुँचाने वाली क्रिया भी विराधना है।

प्रश्न- आराधना किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिनेश्वर देवों की जैसी आज्ञा है, वैसा ही आचरण करना।

प्रश्न- जीव-विराधना न हो इसका उपाय क्या है ?

उत्तर- यतना रखना।

प्रश्न- यतना किसे कहते हैं ?

उत्तर- जीव-विराधना का प्रसंग न आवे इसका पहले से ही ध्यान रखना तथा प्रसंग आने पर जीव-विराधना टालने का प्रयत्न करना।

प्रश्न - क्या 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहने से ही पाप धुल जाते हैं ?

उत्तर- नहीं, बिना मन केवल जीभ से कहने पर पाप निष्फल नहीं होते। मन से पश्चाताप पूर्वक कहने से पाप अवश्य ही निष्फल हो जाते हैं।

4. उत्तरीकरण-सूत्र (तस्स उत्तरी का पाठ)

तरस उत्तरीकरणेणं, पायच्चिछत्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणढाए ठामि काउस्सग्गं। अण्णत्थ ऊससिएणं, णीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाईएणं, उड्डुएणं वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्त-मुच्छाए, सुहुमेहिं अंग संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमोक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

(हारिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 778)

तस्स	-	उसकी दूषित आत्मा की
उत्तरीकरणेणं	-	विशेष उत्कृष्टता के लिए
पायच्छित्तकरणेणं	-	प्रायश्चित करने के लिए
विसोहिकरणेणं	-	विशेष शुद्धि करने के लिये
विसल्लीकरणेणं	-	शल्य से रहित करने के लिये
पावाणं	-	पाप
कम्माणं	-	कर्मों का
निग्घायणट्ठाए	-	नाश करने के लिए
काउस्सग्गं	-	कायोत्सर्ग, शरीर के व्यापारों का त्याग
ठामि	-	करता हूँ
ऊससिएणं	-	उच्छ्वास अर्थात् श्वास लेना
णीससिएणं	-	निःश्वास अर्थात् श्वास निकालना
खासिएणं	-	खांसी आना
छीएणं	-	छींक आना
जंभाइएणं	-	उबासी आना
उड्डुएणं	-	डकार आना
वायनिसग्गेणं	-	अधो वायु निकलना

भमलीए	-	चक्कर आना
पित्तमुच्छाए	-	पित्त विकार से मूर्च्छा आना
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोड़ा-सा)
अगसंचालेहिं	-	अंग का संचार (हिलना)
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोड़ा-सा)
खेल संचालेहिं	-	कफ का संचार
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोड़ा-सा)
दिट्ठिसंचालेहिं	-	दृष्टि का चलना
एवमाइएहिं	-	इत्यादि
आगारेहिं	-	आगारों के
अण्णत्थ	-	सिवाय दूसरे प्रकार से
मे	-	मेरा
काउस्सगो	-	कायोत्सर्ग
अभग्गो	-	अभग्न
अविराहिओ	-	अखंडित
हुज्ज	-	हो
जाव	-	जब तक
अरिहंताणं	-	अरिहंत
भगवताणं	-	भगवान को
णमोक्कारेणं	-	नमस्कार करके
न पारेमि	-	न पारूं
ताव कायं	-	तब तक काया को
ठाणेणं	-	स्थिर करके
मोणेणं	-	वचन से मौन रहकर
झाणेणं	-	मन से शुभ ध्यान धर कर
अप्पाणं	-	आत्मा को (पहले की अपनी पापी)
वोसिरामि	-	अलग करता हूँ

भावार्थ- ईर्यापथिकी क्रिया से लगा हुआ आत्मा का मैल 'मिच्छामि दुक्कडं' से कुछ अंशों में दूर हुआ। उसे अधिक शुद्ध और निर्मल बनाकर पाप कर्मों का नाश करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ। आत्मा को संस्कारित और प्रशस्त बनाने के लिए पापों का प्रायश्चित्त आवश्यक है। प्रायश्चित के लिए आत्मा शुद्ध होनी चाहिये एवं आत्मशुद्धि के लिए शल्यों (माया, निदान और मिथ्यादर्शन) का दूर होना जरूरी है इसलिये मैं शल्य दूर करके आत्मा को

शुद्ध करता हूँ। फिर प्रायश्चित द्वारा आत्मा को प्रशस्त बनाकर पाप कर्मों का नाश करने के लिए काउस्सग्ग (कायोत्सर्ग) करता हूँ। शरीर के व्यापारों का त्याग काउस्सग्ग है। चूंकि इस प्रकार का सर्वथा त्याग संभव नहीं है। इसलिए काउस्सग्ग में जो आगार रखे जाते हैं वे आगार इस प्रकार हैं :-

1. श्वास का लेना और निकालना 2. खाँसना 3. छींकना 4. जंभाई आना 5. डकार आना 7. अपान वायु का सुरना, 8. चक्कर आना 9. पित्त प्रकोप से मूर्च्छा आ जाना 10 अंगों का सूक्ष्म हलन चलन 11. कफ का सूक्ष्म संचार 12. दृष्टि का सूक्ष्म संचालन आदि इनके होते रहने पर भी काउस्सग्ग नहीं टूटता, परन्तु इनके सिवाय अन्य स्वाधीन क्रियाओं का मेरे त्याग है। अपवाद स्वरूप इन क्रियाओं के सिवाय कोई भी क्रिया मुझसे न हो और इससे मेरा काउस्सग्ग सर्वथा अभग्न और अखण्डित रहे यही मेरी अभिलाषा है। 'नमो-अरिहंताणं' शब्द द्वारा अरिहंत भगवान को नमस्कार करके काउस्सग्ग को पूर्ण न करूं तब तक शरीर से निश्चल बनकर, वचन से मौन रहकर और मन से शुभ ध्यान धरकर सब अशुभ व्यापारों का त्याग करता हूँ।

प्रश्न- इसे उत्तरीकरण का पाठ क्यों कहते हैं?

उत्तर- इससे आत्मा को विशेष उत्कृष्ट बनाने के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की जाती है।

प्रश्न- आगार किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रत्याख्यान में रहने वाली छूट को आगार कहते हैं।

प्रश्न- कायोत्सर्ग में आगार क्यों रखे जाते हैं?

उत्तर- क्योंकि जीव-रक्षा आदि के लिए कायोत्सर्ग बीच में छोड़ना पड़ता है तथा कायोत्सर्ग में श्वास आदि स्वाभाविक शारीरिक क्रियाएँ रोकी नहीं जा सकती।

प्रश्न- प्रायश्चित किसे कहते हैं?

उत्तर- जिससे पाप नष्ट होकर आत्मा शुद्ध बने।

प्रश्न- विशुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- अच्छे परिणामों (विचारों) से आत्मा को विशेष शुद्ध बनाना।

प्रश्न- शल्य किसे कहते हैं?

उत्तर- शल्य अर्थात् काँटा। आत्मा के भीतर लगा हुआ घाव (शल्य) जिससे आत्मा पीड़ित होती रहती है।

5. चतुर्विंशतिस्तव सूत्र (लोगस्स का पाठ)

लोगस्सुज्जोयगरे* धम्म - तित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली।।1।।

उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।2।।

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयल-सिजंस-वासुपुज्जं च।
विमल-मणतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।3।।

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ।।4।।

एवं मए-अभिथुआ, विहुय-रयमला पहीण-जर-मरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयन्तु ।।5।।

कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिन्तु ।।6।।

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धासिद्धिं मम दिसंतु ।।7।।

(हारिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 493-509)

खड़े होकर ध्यान करने की विधि-

i) दोनों पैरों के अग्रभाग में चार अंगुल एवं पीछे के भाग में उससे कुछ कम अंतर रखते हुए घुटनों को बिना मोड़े सीधे खड़े रहना।
ii) आँखों को बंद करना या थोड़ी सी खुली रखकर नासिकाग्र पर टिकाना
iii) गर्दन हल्की सी झुकी हुई रखना।
iv) हथेलियों को बिना तनाव के खुली रखते हुए हाथों को नीचे लटकाये रखना।
v) उत्तरीकरण सूत्र बोलते हुए ध्यान की मुद्रा बनाना। 'अप्पाणं वोसिरामि' बोलने से पहले काया को स्थिर कर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

बैठकर ध्यान करने की विधि-

सुखासन में बैठकर रीढ़ की हड्डी को सीधी रखकर नाभि के पास बाँयी हथेली पर दाँयी हथेली (Right Palm on the left palm) रखकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

---

*प्राचीन प्रतियों के अनुसार लोगस्सुज्जोयगरे प्रामाणिक है।

नोट :- पुरुषों को खड़े होकर ही ध्यान करना चाहिए। शारीरिक अनुकूलता न होने आदि कारणों से जो खड़े-खड़े ध्यान न कर सकें तो वे बैठ कर भी कर सकते हैं। बहनों को बैठकर ही ध्यान करना चाहिए।

लोगस्सुज्जोयगरे	-	लोक में प्रकाश करने वाले
धम्मतित्थयरे	-	धर्म रूपी तीर्थ को स्थापित करने वाले
जिणे	-	जिनेन्द्र (राग, द्वेष को जीतने वाले)
अरिहंते	-	अरिहन्त भगवान, कर्म रूप शत्रु का नाश करने वाले
चउवीसंपि	-	चौबीसों
केवली	-	केवलज्ञानी तीर्थंकरों की
कित्तइस्सं	-	मैं स्तुति करूंगा
उसभं च	-	श्री ऋषभदेव स्वामी को और
अजियं	-	श्री अजितनाथ स्वामी को
वंदे	-	वंदन करता हूँ
संभवं च	-	श्री संभवनाथ स्वामी को और
अभिणंदणं	-	श्री अभिनन्दन स्वामी को
सुमइं च	-	श्री सुमतिनाथ स्वामी को और
पउमप्पहं	-	श्री पद्मप्रभ स्वामी को
सुपासं	-	श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी को और
चंदप्पहं	-	श्री चन्द्रप्रभ
जिणं	-	जिनेश्वर को
वंदे	-	वंदना करता हूँ
सुविहिं च	-	श्री सुविधिनाथ स्वामी को और
पुप्फदंतं	-	श्री पुष्पदंत (सुविधिनाथ का दूसरा नाम) स्वामी को
सीअल	-	श्री शीतलनाथ स्वामी को
सिज्जंस	-	श्री श्रेयांसनाथ स्वामी को
वासुपुज्जं च	-	श्री वासुपूज्य स्वामी को और
विमलं च	-	विमलनाथ स्वामी को और
अणंतं	-	श्री अनन्तनाथ स्वामी को
जिणं	-	जिन-रागद्वेष को जीतने वाले
धम्मं च	-	श्री धर्मनाथ स्वामी को और
संतिं	-	श्री शांतिनाथ स्वामी को
वंदामि	-	वंदना करता हूँ
कुंथुं	-	श्री कुंथुनाथ स्वामी को

अरं च	-	श्री अरनाथ स्वामी को और
मल्लिं	-	श्री मल्लिनाथ स्वामी को
वंदे	-	वन्दना करता हूँ
मुणिसुव्वयं	-	श्री मुनिसुव्रत स्वामी को
नमिजिणं च	-	श्री नमिनाथ जिनेश्वर को और
रिट्ठनेमिं	-	श्री अरिष्टनेमि (श्री नेमिनाथ) स्वामी को
पासं	-	श्री पार्श्वनाथ स्वामी को
तह	-	तथा
वद्धमाणं च	-	श्री वर्द्धमान (महावीर) स्वामी को
वंदामि	-	मैं वंदना करता हूँ
एवं	-	इस प्रकार
म ए	-	मेरे द्वारा
अभिथुआ	-	स्तुति किये हुए
विहूय-रयमला	-	पाप रज के मल से रहित
पहीणजरमरणा	-	बुढ़ापे तथा मरण से मुक्त
तित्थयरा	-	तीर्थ की स्थापना करने वाले
चउवीसंपि	-	चौबीसों
जिणवरा	-	जिनेश्वर देव
मे	-	मुझ पर
पसीयंतु	-	प्रसन्न हो
कित्तिय	-	वाणी से कीर्तन किये हुए
वंदिय	-	काया से वन्दन किये हुए
महिया	-	मन से पूजन किये हुए
जे	-	जो
लोगस्स	-	लोक में
उत्तमा	-	उत्तम
सिद्धा	-	सिद्ध भगवान हैं
ए	-	वे
आरुग्गबोहिलाभं	-	आरोग्य अर्थात् मोक्ष के लिये परभव में सम्यक्त्व का लाभ और
समाहिवरमुत्तमं	-	सर्वोत्कृष्ट भाव समाधि को
दिंतु	-	देवें

चंदेसु	-	चन्द्रमाओं से भी
निम्मलयरा	-	विशेष निर्मल
आइच्चेसु	-	सूर्यों से भी
अहियं	-	अधिक
पयासयरा	-	प्रकाश करने वाले
सागरवरगंभीरा	-	महासमुद्र के समान गंभीर
सिद्धा	-	सिद्ध भगवान
मम	-	मुझको
सिद्धिं	-	सिद्धि (मोक्ष)
दिसंतु	-	देवें।

भावार्थ- (तीर्थंकरों की स्तुति) तीनों लोकों में धर्म का उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, राग-द्वेष आदि अन्तरंग शत्रुओं पर विजय पाने वाले चौबीस केवलज्ञानी तीर्थंकरों की मैं स्तुति करूंगा।

सर्वश्री ऋषभदेवजी, अजितनाथजी, संभवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, सुविधिनाथजी, शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी, वासुपूज्यजी, विमलनाथजी, अनन्तनाथजी, धर्मनाथजी, शांतिनाथजी, कुंथुनाथजी, अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतजी, नमिनाथजी, अरिष्टनेमिजी, (नेमिनाथजी), पार्श्वनाथजी और महावीर स्वामीजी इन चौबीस जिनेश्वरों की मैं स्तुति करता हूँ और उन्हें नमस्कार करता हूँ।

उपरोक्त प्रकार से मैंने जिनकी स्तुति की है जो कर्म मल से रहित है, जो जरा और मरण से मुक्त है और जो तीर्थ के प्रवर्तक है वे चौबीसों जिनेश्वर देव मुझ पर प्रसन्न हों। जिनका वाणी से कीर्तन, काया से वन्दन और मन से भावपूजन किया गया है, जो सम्पूर्ण लोक में उत्तम है और जो सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं, वे भगवान मुझको मोक्ष प्राप्ति के लिए बोधि लाभ दे अर्थात् जिनधर्म की प्राप्ति करावें तथा सर्वोत्कृष्ट भावसमाधि प्रदान करें।

जो चन्द्रमाओं से भी निर्मल है, सूर्यों से भी विशेष प्रकाशमान है, और स्वयम्भूरमण नामक महासमुद्र के समान गंभीर हैं ऐसे सिद्ध भगवान मुझको सिद्धि (मोक्ष) देवें। यद्यपि राग-द्वेष रहित होने से भगवान न किसी पर प्रसन्न होते हैं, न कुछ देते ही हैं, पर उनका ध्यान करने से चित्त शुद्धि द्वारा अभिलाषित फल की प्राप्ति होती है। जिस तरह चिंतामणि रत्न जड़ होने पर भी उससे वांछित फल की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- इसे चतुर्विंशतिस्तव पाठ क्यों कहते हैं ?

उत्तर- इसमें चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है।

प्रश्न- क्या तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न होते हैं ?

उत्तर- नहीं। क्योंकि वे राग-द्वेष रहित होते हैं।

प्रश्न- तब 'तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो' ऐसी प्रार्थना क्यों की जाती हैं ?

उत्तर- इसलिए कि ऐसी प्रार्थना से हमारी भावना तीर्थंकरों की आज्ञा के अनुरूप प्रवृत्ति करने की बनती हैं।

प्रश्न- महापुरुषों का स्मरण करने से क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर- 1. महापुरुषों का स्मरण हमारे हृदय को पवित्र बनाता है। 2. वासनाओं की अशांति को दूर कर अखंड आत्म-शांति का आनंद देता है। 3. प्रभु का मंगलमय पवित्र नाम-स्मरण अंतरात्मा में ज्ञान-प्रकाश फैलाता है। 4. मनुष्य जैसी श्रद्धा करता है, जैसा ध्यान, संकल्प और चिंतन करता है, वैसा ही बन जाता है। 5. यह आत्मा से परमात्मा बनने का पथ है।

6. कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ*

कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्याया हो, कायोत्सर्ग में मन, वचन, काया के योग चलित हुए हों तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(हारिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 454)

प्रश्न- कितने दोषों को टालकर कायोत्सर्ग करना चाहिए ?

उत्तर- 19 दोषों को टालकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

प्रश्न- ध्यान और कायोत्सर्ग में क्या अंतर है ?

उत्तर- कायोत्सर्ग का तात्पर्य है अमुक समय तक श्वास निःश्वास आदि आगारों को रखते हुए शरीर एवं वचन की प्रवृत्ति का त्याग करना। ध्यान का तात्पर्य है चित्त को किसी विषय में एकाग्र करना। कायोत्सर्ग निवृत्ति प्रधान हैं। कायोत्सर्ग करने से जब देहध्यान दूर हट जाता है तत्पश्चात् चित्त को लोगस्स आदि किसी विषय पर एकाग्र करना ध्यान की व्यावहारिक प्रक्रिया है।

---

*श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के तीसवें अध्ययन में ध्यान के विषय में कहा गया है कि 'अट्टरुद्दाणि वज्जिता, धम्म सुक्काणि झायाए' यानी ध्यान में आर्त्त, रौद्र को छोड़कर धर्म शुक्ल ध्यान ध्याना चाहिए। इस जिनोक्तविधि में लगे दोषों की शुद्धि के लिए ध्यान के बाद यह पाठ बोलना आवश्यक है कि कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान रौद्र ध्यान ध्याया हो धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान न ध्याया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।।

7. प्रतिज्ञा सूत्र (करेमि भंते का पाठ)

करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव-नियमं* पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

भंते	-	हे भगवन!
सामाइयं	-	सामायिक को
करेमि	-	मैं ग्रहण करता हूँ
सावज्जं	-	सावद्य (पाप सहित)
जोगं	-	व्यापार का
पच्चक्खामि	-	प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ
जाव	-	जब तक
नियमं	-	इस नियम को
पज्जुवासामि	-	मैं धारण करता रहूँ तब तक (पर्युपासना)
दुविहं	-	दो करण से
तिविहेणं	-	तीन प्रकार के योग से अर्थात्
मणसा	-	मन से
वयसा	-	वचन से
कायसा	-	काया से
न करेमि	-	सावद्य योग को न करूंगा
न कारवेमि	-	न दूसरों से कराऊंगा
भंते	-	हे भगवान!
तस्स	-	उससे (पहले के पाप से)
पडिक्कमामि	-	मैं निवृत्त होता हूँ।
निंदामि	-	उस पाप की आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ।
गरिहामि	-	गुरु साक्षी से गर्हा निन्दा करता हूँ.
अप्पाणं	-	अपनी आत्मा को उस पाप व्यापार से
वोसिरामि	-	हटाता हूँ, अलग करता हूँ.....

भावार्थ- मैं सामायिक व्रत को ग्रहण करता हूँ। (राग द्वेष से हटकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में लगना ही सामायिक है।) मैं पाप जनक व्यापारों का त्याग करता हूँ। जब तक मैं इस नियम का पालन करता हूँ तब तक मन, वचन और काया- इन तीनों योगों द्वारा पाप व्यापार न

---

*जाव-नियमं के स्थान पर जितनी सामायिक लेनी हो वह बोलें।

स्वयं करूंगा और न दूसरों से कराऊंगा। हे स्वामिन् ! पूर्वकृत पाप से मैं निवृत होता हूँ। हृदय से मैं उसे बुरा समझता हूँ और गुरु के सामने उसकी निन्दा करता हूँ। इस प्रकार में अपनी आत्मा को पाप क्रिया से छुड़ाता हूँ।

प्रश्न- भगवान किसे कहते हैं ?

उत्तर- साधारणतया अरिहंत तथा सिद्ध को भगवान कहा जाता है परन्तु यहाँ आचार्य आदि गुरु को भी भगवान कहा गया है।

प्रश्न- सामायिक किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिसके द्वारा समभाव की प्राप्ति हो।

प्रश्न- सामायिक में किसका त्याग किया जाता है ?

उत्तर- सामायिक में सावद्य योगों (अट्ठारह पापों की प्रवृत्ति) का त्याग किया जाता है।

प्रश्न- करण किसे कहते हैं ?

उत्तर- करने, कराने और करते हुए का अनुमोदन करने को करण कहते हैं।

प्रश्न- योग किसे कहते हैं ?

उत्तर- करण के साधन को योग कहते हैं। मन, वचन और काया ये तीन योग हैं।

8. प्रणिपात सूत्र (शक्रस्तव, णमोत्थु णं का पाठ)

णमोत्थु णं अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर पुंडरीयाणं, पुरिस-वर-गंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं, लोगहिआणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्म-सार-हीणं, धम्मवर-चाउरन्त, चक्क-वट्टीणं, दीवो-ताणं सरणं* गई पइट्ठा, अप्पडि-हय-वर-नाण-दंसण धराणं विअट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं सव्वणुणं सव्व-दरिसीणं सिव-मयल, मरुअ, मणन्त, मक्खय, मव्वाबाह, मपुणरावित्ति, सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं❁ णमो जिणाणं जिअभयाणं ।

(श्री औपपातिक सूत्र 12, श्री कल्पसूत्र शक्रस्तव)

नोट :- (-) इस चिन्ह वाले स्थान पर थोड़ा विराम लेकर आगे के पाठ का उच्चारण करना चाहिये।

---

* प्राचीन प्रतियों के अनुसार 'सरणं' शब्द शुद्ध है।

❁ दूसरी बार णमोत्थु णं बोलने के समय 'ठाणं संपत्ताणं' के बदले 'ठाणं संपाविउकामाणं' बोलना चाहिए। ठाणं संपाविउकामाणं अर्थात् सिद्धि स्थान को प्राप्त करने वाले।

अरिहंताणं भगवंताणं	-	सभी अरिहंत भगवान को
णमोत्थु णं	-	नमस्कार हो
आइगराणं	-	धर्म की आदि (प्रारंभ) करने वाले
तित्थयराणं	-	धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले
सयंसंबुद्धाणं	-	अपने आप ही बोध पाये हुए
पुरिसुत्तमाणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ
पुरिससीहाणं	-	पुरुषों में सिंह के समान
पुरिस-वर पुंडरिआणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ श्वेत कमल के समान
पुरिसवर गंध-हत्थीणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ गंधहस्ती के समान
लोगुत्तमाणं	-	लोक में उत्तम
लोगणाहाणं	-	लोक के नाथ
लोगहिआणं	-	लोक का हित करने वाले,
लोगपईवाणं	-	लोक के लिए दीपक के समान
लीगपज्जोयगराणं	-	लोक में उद्योत करने वाले
अभयदयाणं	-	अभय देने वाले
चक्खुदयाणं	-	ज्ञान रूपी नेत्र देने वाले
मग्गदयाणं	-	मोक्ष मार्ग के दाता
सरणदयाणं	-	शरण देने वाला
जीव दयाणं	-	संयम का ज्ञानरूपी जीवन वाले
बोहिदयाणं	-	बोध अर्थात् सम्यक्त्व देने वाले
धम्मदयाणं	-	धर्म के दाता
धम्मदेसयाणं	-	धर्म के उपदेशक
धम्मनायगाणं	-	धर्म के नायक
धम्मसारहीणं	-	धर्म के सारथी
धम्मवरचाउरन्त-चक्कवट्टीणं	-	चार गति का अन्त करने वाले, धर्म के श्रेष्ठ चक्रवर्ती
दीवो	-	संसार समुद्र में द्वीप के समान
ताणं	-	रक्षक रूप
सरणं	-	शरणभूत
गइ	-	गति (आश्रय) रूप
पईट्ठा	-	संसार-कूप में गिरते हुए प्राणियों के लिये आधार रूप
अप्पडिहयवर	-	अप्रतिहत (बाधा रहित) तथा श्रेष्ठ

नाणदंसणधराणं	-	ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले
विअट्टछउमाणं	-	छद्म अर्थात् घाती कर्म रहित
जिणाणं	-	स्वयं राग द्वेष को जीतने वाले
जावयाणं	-	औरों को जिताने वाले
तिण्णाणं	-	स्वयं संसार से तिरे हुए तथा
तारयाणं	-	दूसरों को तारने वाले
बुद्धाणं	-	स्वयं बोध पाये हुए तथा
बोहयाणं	-	दूसरों को बोध प्राप्त कराने वाले
मुत्ताणं	-	स्वयं कर्म बंधन से छूटे हुए
मोयगाणं	-	दूसरों को छुड़ाने वाले
सव्वण्णूणं	-	सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले)
सव्वदरिसीणं	-	सर्वदर्शी (सब कुछ देखने वाले)
सिवं	-	उपद्रवरहित, कल्याण स्वरूप
अयलं	-	अचल (स्थिर)
अरूअं	-	अरूज (रोग रहित)
अणन्तं	-	अनन्त (अन्त से रहित)
अक्खयं	-	क्षय रहित
अव्वाबाह	-	बाधा (पीड़ा) रहित
अपुणरावित्ति	-	पुनरागमन रहित ऐसे
सिद्धिगइ नामधेयं	-	सिद्धि गति नामक
ठाणं	-	स्थान को
संपत्ताणं	-	प्राप्त हुए
जिअभयाणं	-	भय को जीतने वाले
जिणाणं	-	जिनेश्वर भगवन्तों को
णमो	-	नमस्कार हो
संपाविउकामाणं	-	प्राप्त होने वाले

भावार्थ- अरिहन्त भगवान को मेरा नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले हैं, साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका रूपी चार तीर्थों की स्थापना करने वाले हैं, दूसरों के उपदेश के बिना ही बोध को प्राप्त कर चुके हैं, सब पुरुषों में उत्तम हैं, पुरुषों में सिंह के समान निर्भय हैं, पुरुषों में कमल के समान अलिप्त हैं, पुरुषों में प्रधान गन्धहस्ति के समान हैं, लोक में उत्तम हैं, लोक के नाथ हैं, लोक के हितकारक हैं, लोक में प्रदीप के समान प्रकाश करने वाले हैं, लोक में अज्ञान रूप अन्धकार का नाश करने वाले हैं, दुःखियों को अभयदान देने वाले हैं, अज्ञान से

अन्धे लोगों को ज्ञान रूप नेत्र देने वाले हैं, मार्ग भ्रष्ट को मार्ग दिखाने वाले हैं, संयम या ज्ञान रूप जीवन देने वाले हैं, शरणागत को शरण देने वाले हैं, सम्यक्त्व प्रदान करने वाले हैं, धर्म का दान करने वाले हैं, जिज्ञासुओं को धर्म का उपदेश देने वाले हैं, धर्म के नायक हैं, धर्म के सारथी (संचालक) हैं, चार गति का अन्त करने वाले, धर्म रूपी चक्र को धारण करने वाले अतएव प्रधान धर्म चक्रवर्ती रूप हैं, संसार रूप समुद्र में द्वीप के समान रक्षक रूप, शरण रूप, गतिरूप एवं आधारभूत हैं, सर्व पदार्थों के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन को अर्थात् केवलज्ञान केवलदर्शन को धारण करने वाले हैं, चार घाती कर्म रूप आवरण से मुक्त हैं, स्वयं राग-द्वेष को जीतने वाले और दूसरों को जिताने वाले हैं, स्वयं संसार से पार पहुंच चुके और दूसरों को भी पार पहुंचाने वाले हैं, स्वयं ज्ञान को पाए हुए हैं और दूसरों को भी ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं, स्वयं मुक्त हैं और दूसरों को भी मुक्ति प्राप्त कराने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं तथा कल्याणकारी, उपद्रव रहित, अचल (स्थिर), रोग रहित, अनन्त, अक्षय, बाधा पीड़ा रहित और पुनरागमन (जन्ममरण) रहित ऐसे मोक्ष स्थान को प्राप्त हैं, अथवा प्राप्त होने वाले हैं। ऐसे सब प्रकार के भयों को जीतने वाले जिनेश्वरों को नमस्कार हो।

प्रश्न- णमोत्थु णं को प्रणिपात सूत्र क्यों कहते हैं ?

उत्तर- प्रणिपात का अर्थ नमस्कार होता है। महापुरुषों को नमस्कार किया जाता है, अतः इसे प्रणिपात सूत्र कहते हैं।

प्रश्न- इसे शक्रस्तव का पाठ क्यों कहते हैं ?

उत्तर- क्योंकि पहले देवलोक के इन्द्र, जिनका नाम शक्र है, वे भी इसी णमोत्थु णं से अरिहन्तों व सिद्धों की स्तुति करते हैं।

प्रश्न- लोगस्स और णमोत्थु णं में क्या अन्तर है ?

उत्तर- लोगस्स में प्रमुख रूप से इस अवसर्पिणी काल में हुए तीर्थंकर सिद्धों के सिद्धावस्था भावी गुणों के उल्लेख पूर्वक स्तुति है, जबकि णमोत्थु णं में सभी तीर्थंकर अवस्था भावी गुणों के उल्लेख पूर्वक तीर्थकर सिद्धों एवं तीर्थंकरों की स्तुति है।

प्रश्न- स्तव स्तुति से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर- इससे जीव ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप बोधि लाभ को प्राप्त कर अंतक्रिया कर मोक्ष को प्राप्त करता है अथवा आराधक होकर वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है।

प्रश्न- सभी प्रकार की भक्ति में कौन सी भक्ति सर्वश्रेष्ठ है ?

उत्तर- गुण-स्मरण एवं आज्ञा पालन रूप भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

9. धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ*

णमोत्थु णं (रामस्स गणिवरस्स)❁ मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स।

मूल शब्द	-	**अर्थ**
मम	-	मेरे
धम्मायरियस्स	-	धर्माचार्य जी
धम्मोवएसगस्स	-	धर्मोपदेशक
(रामस्स गणिवरस्स)	-	आचार्य प्रवर (श्री रामेश गणिवर) को
णमोत्थु णं	-	नमस्कार हो

भावार्थ- मेरे धर्माचार्यजी एवं धर्मोपदेशक आचार्य प्रवर (श्री रामेश गणिवर) को नमस्कार हो)

10. सामायिक पारने का पाठ (एयस्स नवमस्स का पाठ)

एयस्स नवमस्स, सामाइय-वयस्स, पंच अइयारा, जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं-मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(हारिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 831)

एयस्स	-	इस
नवमस्स	-	नवें
सामाइयवयस्स	-	सामायिक व्रत के
पंच	-	पाँच
अइयारा	-	अतिचार
जाणियव्वा	-	जानने योग्य है, किन्तु
न समायरियव्वा	-	आचरण करने योग्य नहीं हैं
तं जहा	-	वे इस तरह हैं।
ते	-	उनकी
आलोउं	-	आलोचना करता हूँ,

---

* रायपसेणिय आदि अनेक आगमों में क्वचित् सिद्धों व अरिहंतों को नमस्कार के पश्चात् अपने धर्माचार्य को नमस्कार करने का उल्लेख प्राप्त होता है। दो णमोत्थु णं के पश्चात् आवक-श्राविकाओं के द्वारा भी अपने धर्माचार्य की स्तुति करना आगमिक विधि है। अतः सर्वत्र दो णमोत्थु णं के पश्चात् 'धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुतिः पाठ' उच्चारणीय होने के कारण इस पाठ का संयोजन किया गया है।

❁ अपने-अपने धर्म गुरु का नाम लिया जा सकता है।

मणदुप्पणिहाणे	-	मन में बुरे विचार उत्पन्न करना
वयदुप्पणिहाणे	-	कठोर या पाप जनक वचन बोलना
कायदुप्पणिहाणे	-	काया से पाप प्रवृत्ति करना, जैसे- बिना देखे पूंजे, पृथ्वी आदि पर बैठना
सामाइयस्स सइ अकरणया	-	सामायिक करने का काल विस्मरण करना
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया	-	सामायिक का समय होने से पहले ही पार लेना या अनवस्थित रूप से सामायिक करना।
तस्स	-	उससे होने वाला
मि	-	मेरा
दुक्कडं	-	पाप (दुष्कृत्य)
मिच्छा	-	मिथ्या (निष्फल) हो।

भावार्थ- श्रावक के बारह व्रतों में से नवाँ व्रत सामायिक व्रत है। इसके पाँच अतिचार हैं, वे जानने योग्य हैं, परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं। उन अतिचारों की आलोचना करता हूँ, जैसे कि 1. सामायिक के समय मन में बुरे विचार किये हों। 2. कठोर या पाप जनक वचन बोले हों। 3. अयतना पूर्वक शरीर से चलना-फिरना, हाथ-पाँव को फैलाना, संकोचना आदि क्रियाएं की हों। 4. सामायिक करने का काल याद न रखा हो। 5. अल्पकाल तक या अनवस्थित रूप से जैसे-तैसे सामायिक की हो।

इन पाँचों अतिचारों से होने वाला मेरा पाप निष्फल हो।

सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं न पालियं न तीरियं न किट्टियं न सोहियं न आराहियं, आणाए अणुपालियं ण भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामाइयं	-	सामायिक का
सम्मं	-	सम्यक्
कारणं	-	काया से
न फासियं	-	स्पर्श न किया हो
न पालियं	-	पालन न किया हो
न सोहियं	-	अतिचारों से रहित उसे शुद्ध न किया हो
न तीरियं	-	पूर्ण न किया हो
न किट्टियं	-	कीर्तन न किया हो
न आराहियं	-	आराधन न किया हो
आणाए	-	आज्ञानुसार

अणु पालियं न भवइ	-	पालन न किया हो
तस्स	-	उससे होने वाला
मि		मेरा
दुक्कडं	-	पाप (दुष्कृत्य)
मिच्छा	-	मिथ्या (निष्फल) हो।

भावार्थ- सामायिक का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श न किया हो, उसका पालन न किया हो, अतिचार टाल कर उसकी शुद्धि न की हो, उसे पूर्ण न किया हो, कीर्तन न किया हो, आराधना न की हो एवं आज्ञानुसार उसका पालन न किया हो, उससे होने वाला मेरा पाप निष्फल हो।

सामायिक में दस मन के, दस वचन के, बारह काया के- इन कुल बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक में स्त्री कथा (महिलाएँ पुरुष कथा कहे), भत्त (भोजन) कथा, देश-कथा, राज कथा, इन चार कथाओं में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा इन चार संज्ञाओं में से किसी भी संज्ञा का सेवन किया हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जानते-अजानते मन, वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक व्रत विधि पूर्वक न लिया हो, विधि पूर्वक न किया हो, विधि में कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक तथा विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक लेने की विधि

1. निस्सीही निस्सीही- सामायिक स्थान (धर्म स्थान) में प्रवेश करते ही निस्सीही निस्सीही शब्द का उच्चारण करना अर्थात् मैं पाप कर्मों का निषेध करता हूँ।

2. प्रतिलेखन- स्थान पूँज कर, आसन, मुखवस्त्रिका, वस्त्र आदि धार्मिक उपकरणों का प्रतिलेखन करना एवं आसन बिछाना।

3. वस्त्र परिवर्तन- भाइयों के लिए चोलपट्टा या धोती एवं चादर (चोलपट्टे की लम्बाई पैर के टखने तक रहे) तथा मुँहपत्ति धारण करे एवं महिलाएं सादे वस्त्र रखे एवं मुँहपत्ति लगावे।

4. वन्दन- तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार विधि सहित वन्दना। (सन्त सतियाँजी म.सा. विराजमान हो तो उनके सम्मुख और न हों तो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुँह करके वन्दनीय के दाहिने कान से बायें कान की तरफ, अर्थात् अपने बायें से दायें कान की ओर तीन बार प्रदक्षिणा करे)

5. नमस्कार महामन्त्र, इच्छाकारेणं, तस्स उत्तरी का पाठ- (तस्स उत्तरी का पाठ बोलते समय ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं तक का पाठ उच्चारण पूर्वक बोले फिर अप्पाणं वोसिरामि शब्द मन में बोलना)।

6. कायोत्सर्ग- शरीर की चंचलता रहित होकर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करें।* 'नमो अरिहंताणं' बोल कर कायोत्सर्ग खोले।

ध्यान करने की विधि

खड़े होकर ध्यान करने की विधि-

i) दोनों पैरों के अग्रभाग में चार अंगुल एवं पीछे के भाग में उससे कुछ कम अंतर रखते हुए घुटनों को बिना मोड़े सीधे खड़े रहना।
ii) आँखों को बंद करना या थोड़ी सी खुली रखकर नासिकाग्र पर टिकाना
iii) गर्दन हल्की सी झुकी हुई रखना।
iv) हथेलियों को बिना तनाव के खुली रखते हुए हाथों को नीचे लटकाये रखना।
v) उत्तरीकरण सूत्र बोलते हुए ध्यान की मुद्रा बनाना। 'अप्पाणं वोसिरामि' बोलने से पहले काया को स्थिर कर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

---

* कई लोग सामायिक लेने की प्रक्रिया में ध्यान में 'इच्छाकारेण' की पाटी बोलते हैं किन्तु वह उपयुक्त नहीं लगता। इसके अनेक कारण हैं यथा (1) प्रारंभ में 'इच्छाकारेणं' की पाटी बोलकर 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' दे दिया जाता है। इसके पश्चात् ध्यान में इच्छाकारेणं का पाठ बोलकर 'तस्स आलोउं' कहना ठीक नहीं है। क्योंकि 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' प्रतिक्रमण रूप बड़ा प्रायश्चित है तथा 'तस्स आलोउं' आलोचना रूप छोटा प्रायश्चित। आलोचना के बाद प्रतिक्रमण का क्रम ही उपयुक्त है, प्रतिक्रमण के बाद आलोचना का नहीं। (2) ध्यान में सामायिक के उद्देश्य का स्मरण होना चाहिए, जो लोगस्स के द्वारा ही हो सकता है. इच्छाकारेणं के द्वारा नहीं। (3) जहाँ-जहाँ ध्यान के तुरन्त बाद खुला लोगस्स बोला जाता है, वहाँ-वहाँ ध्यान में लोगस्स का पाठ होता है जैसे सामायिक पारने की विधि में, प्रतिक्रमण के चउवीसत्थय में, प्रतिक्रमण के पाँचवें आवश्यक में आदि। सामायिक लेते समय भी ध्यान के बाद खुला लोगस्स बोला जाता है अतः ध्यान में भी लोगस्स होना उपयुक्त है।

बैठकर ध्यान करने की विधि-

सुखासन में बैठकर रीढ़ की हड्डी को सीधी रखकर नाभि के पास बाँयी हथेली पर दाँयी हथेली (Right Palm on the left palm) रखकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

नोट :- पुरुषों को खड़े होकर ही ध्यान करना चाहिए। शारीरिक अनुकूलता न होने आदि कारणों से जो खड़े-खड़े ध्यान न कर सकें तो वे बैठ कर भी कर सकते हैं। बहनों को बैठकर ही ध्यान करना चाहिए।

7. नमस्कार मंत्र- कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ एवं एक लोगस्स का पाठ बोले।

8. प्रत्याख्यान- करेमि भन्ते के पाठ से सामायिक व्रत के प्रत्याख्यान (साधु-साध्वी या बड़े श्रावक-श्राविका जो सामायिक में हैं, उनसे ग्रहण करें। न हो तो स्वयं लेवे।) यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि यदि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका विशेष ज्ञानार्जन-प्रवचन आदि में संलग्न हों तो उन्हें अन्तराय न देते हुए स्वयं प्रत्याख्यान ले लेवें। करेमि भन्ते के पाठ में जहाँ 'जावनियम' शब्द आवे उसके स्थान पर जितनी सामायिक लेना हो उतने मुहूर्त्त उपरान्त बोल कर आगे का पाठ पूर्ण करें।

9. णमोत्थु णं (शक्रस्तव) देने की विधि- आसन से नीचे बैठकर बायाँ घुटना ऊँचा कर दोनों कुहनियों को पेट पर लगाकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर मस्तक पर दोनों हाथों को रखना चाहिए। विराम स्थल का ध्यान रखते हुए भाव सहित शक्रस्तव का उच्चारण करना चाहिए। दो बार णमोत्थु णं का पाठ बोले। पहले णमोत्थु णं के अन्त में 'ठाणं संपत्ताण' एवं दूसरी बार णमोत्थु णं में 'ठाणं संपाविउकामाणं' कहना। दो णमोत्थु णं के बाद अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ कहे।

नोट- एक सामायिक का समय 48 मिनट (1 मुहूर्त्त) का होता है।

सामायिक पारने की विधि

1. नमस्कार महामन्त्र। इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर।
2. दो लोगस्स का ध्यान करें, 'नमो अरिहंताणं' कहकर पारना।
3. नमस्कार महामन्त्र, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलकर एक लोगस्स का पाठ बोलना।
4. दो बार णमोत्थु णं व धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ पूर्व विधि के अनुसार, सामायिक पारने का पाठ 'एयस्स नवमस्स' बोले एवं तीन बार नमस्कार मन्त्र बोलकर सामायिक पारना ।

प्रश्न- सामायिक कहाँ करनी चाहिए ?

उत्तर- 1. जहाँ तक हो सके सन्त / सतियांजी म.सा. विराजते हों, वहाँ 2. जहाँ श्रावक आदि

धर्म-क्रिया करते हों 3. अपने घर में सामायिक करनी हो तो एकांत स्थान में सामायिक करें।

प्रश्न- सामायिक करने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर- 1. समभाव की प्राप्ति होती है। 2. अठारह पाप छूटते हैं। 3. दो घड़ी साधु जैसा जीवन बीतता है। 4. जीवों की दया और रक्षा की भावना बढ़ती है और दृढ़ बनती है। 5. सामायिक करने से जिनवाणी सुनने, पढ़ने और समझने का अवसर मिलता है।

प्रश्न- सामायिक का वेश तथा उपकरण कैसे होने चाहिए ?

उत्तर- निरवद्य स्थान को देखकर या पूँज कर सादा आसन बिछावें। सांसारिक वेश कुर्ता, टोपी, पगड़ी, पेन्ट, पायजामा, बनियान, स्वेटर, हाथ-पैर के मोजे, रंगीन लुंगी तथा राग उत्पन्न होने वाले वस्त्र आभूषण न पहनकर सादे वस्त्र पहनना चाहिए। भाईयों को खुले लाँग वाली धोती या सफेद-चोलपट्टा पहनकर सफेद दुपट्टा ओढ़ना चाहिए। मुख-वस्त्रिका का प्रतिलेखन कर उसे धारण करें। धार्मिक पुस्तकें, माला, पूंजनी आदि रखें। **(सामायिक में सेल की घड़ी देखने एवं मोबाईल आदि इलैक्ट्रोनिक उपकरण का प्रयोग एवम् स्पर्श सर्वथा निषेध है।)**

प्रश्न- दुष्प्रणिधान किसे कहते हैं ?

उत्तर- मन, वचन या काया के योग को अशुभ प्रवृत्ति में लगाना तथा उसमें एकाग्र बनाना दुष्प्रणिधान है।

प्रश्न- व्रत दूषित होने के कौन-कौन से कारण होते हैं ?

उत्तर- व्रत दूषित होने के चार कारण होते हैं

1. व्रत भंग करने का संकल्प (विचार) **अतिक्रम** है।
2. व्रत भंग करने के लिए कायिक व्यापार प्रारंभ करना **व्यतिक्रम** है।
3. व्रत भंग करने के लिए साधनों को जुटाना तथा व्रत भंग के लिए तत्पर होना **अतिचार** है।
4. व्रत को सर्वथा भंग करना **अनाचार** है।

(3) प्रश्न-उत्तर

प्रश्न 1. जैन कौन है ?

उत्तर- जो जिन अर्थात् वीतराग देव की वाणी में श्रद्धा रखता है और उसका पालन करता है, वह जैन है। जैन वह है, जो मन के विकारों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को जीतने की कोशिश करता है और सदा भले काम करता है।

प्रश्न 2. भले काम कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- 1. किसी को दुःख न देना। 2. सबके दुःख दूर करने का प्रयत्न करना 3. सदा सच बोलना। 4. चोरी न करना। 5. गाली न देना। 6. दुःख में घबराना नहीं। 7. धन सम्पत्ति का अभिमान नहीं करना। 8. सबके साथ अच्छा बर्ताव करना।

प्रश्न 3. जैन को क्या करना चाहिए ?

उत्तर- 1. सुबह उठते ही नवकार मंत्र का जाप करना। 2. प्रतिदिन सामायिक करना। 3. माता-पिता तथा अपने से बड़ों का आदर करना एवं प्रणाम करना। 4. आपस में जय जिनेन्द्र कहना। 5. देव, गुरु, धर्म की भक्ति करना 16 भूखे को भोजन कराना। 7. रोगी की सेवा करना 8. रात्रि भोजन का त्याग करना। 9. सदाचार का पालन करना। 10. धार्मिक पुस्तकें पढ़ना आदि।

प्रश्न 4. जैन कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर- तीन प्रकार के होते हैं- 1. श्रद्धा रखने वाले, 2. श्रद्धा के साथ थोड़ा चारित्र (अणुव्रतादि) पालने वाले 3. श्रद्धा के साथ पूरा चारित्र (पाँचों महाव्रत) पालने वाले।

प्रश्न 5. धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो दुर्गति में पड़ते हुए जीवों को बचाये तथा सुगति में ले जावे, उसे धर्म कहते हैं। जो धारण करने योग्य है वह धर्म कहलाता है।

प्रश्न 6. धर्म क्या है ?

उत्तर- 1. सम्यग् ज्ञान 2. सम्यग् दर्शन 3. सम्यग् चारित्र तथा 4. सम्यग् तप रूप धर्म है।

सम्यग् ज्ञान- लोकगत वस्तुओं व स्वरूप की सही जानकारी करना ज्ञान कहलाता है।

सम्यग् दर्शन- अरिहन्त द्वारा बताये हुए तत्वों पर श्रद्धा रखना।

सम्यग् चारित्र- महाव्रत या अणुव्रतादि का पालन करना।

सम्यग् तप- उपवास आदि करके काया आदि को तपाना तथा प्रायश्चित करके मन को तपाना।

प्रश्न 7. हमारे देव कौन हैं ?

उत्तर- अरिहन्त और सिद्ध भगवान हमारे देव हैं।

प्रश्न 8. हमारे गुरु कौन हैं ?

उत्तर- आचार्यजी महाराज, उपाध्यायजी महाराज और पंच महाव्रतधारी पांच समिति तीन गुप्ति का पालन करने वाले जैन साधु-साध्वी हमारे गुरु हैं।

प्रश्न 9. जैन धर्म से इस लोक और परलोक में क्या लाभ होते हैं?

उत्तर- जैन धर्म से निम्न लाभ होते हैं-

इस लोक में	परलोक में
1. ज्ञान से बुद्धि विकसित होती है।	ज्ञान से समझने की, स्मरण की, तर्क शक्ति मिलती है।
2. श्रद्धा से असत्य का चक्र नहीं चलता।	श्रद्धा से देव तथा मनुष्य गति मिलती है। आर्य क्षेत्र, अच्छा कुल मिलता है।
3. अहिंसा से वैर-विरोध शांत हो मैत्री बढ़ती है, समय पर रक्षक मिलते हैं।	अहिंसा से निरोगी काया और दीर्घ आयुष्य मिलता है।
4. सत्य से विश्वसनीयता और प्रामाणिकता बढ़ती है।	सत्य से मधुर कंठ और प्रिय वाणी मिलती है।
5. अचौर्य से सब स्थानों में प्रवेश मिल जाता है।	अचौर्य से चोर का वश नहीं चलता।
6. ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ एवं बलवान रहता है।	ब्रह्मचर्य से पाँचों इन्द्रियां मिलती है।
7. अपरिग्रह से तन-मन को अधिक विश्राम मिलता है।	अपरिग्रह से धनवान कुल में जन्म होता है।
8. तप से रोग नष्ट होते हैं, शरीर निरोग रहता है।	तप से किसी प्रकार का दुःख या शोक नहीं रहता है।

प्रश्न 10. जैन धर्म से तात्कालिक लाभ क्या है ?

उत्तर- 1. संसार के स्वरूप का सम्यग् बोध होता है।

2. आत्मा कुव्यसनों से दूर हटती है।

3. कषायों के मन्द होने से आत्मा में शांति आती है तथा बाह्य सम्बन्धों में भी मधुरता आती है।

तत्त्व विभाग

पहला सिद्धान्त– जीवनिकाय छह

1. पृथ्वीकायिक
2. अप्कायिक
3. तेजस्कायिक
4. वायुकायिक
5. वनस्पतिकायिक
6. त्रसकायिक

- मैं छह जीवनिकायों की रक्षा करूँ।

प्रश्न 1 जीवनिकाय किसे कहते हैं?

उत्तर निकाय = समुदाय (Group)। समान प्रकार के जीवों के समुदाय को जीवनिकाय कहते हैं।

प्रश्न 2 पृथ्वीकायिक किसे कहते हैं?

उत्तर पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है, उन्हें पृथ्वीकायिक कहते हैं। जैसे–मिट्टी, हिंगुल, हड़ताल, पत्थर, नमक, धातु, हीरा, पन्ना आदि।

प्रश्न 3 अप्कायिक किसे कहते हैं?

उत्तर पानी ही जिन जीवों का शरीर है, उन्हें अप्कायिक कहते हैं। जैसे– ओस, धूँअर; कुँआ, बावड़ी, वर्षा, समुद्र आदि का पानी।

प्रश्न 4 तेजस्कायिक किसे कहते हैं?

उत्तर अग्नि ही जिन जीवों का शरीर है, उन्हें तेजस्कायिक कहते हैं। जैसे– जलता हुआ कोयला, चूल्हे की अग्नि, सौर ऊर्जा से उत्पन्न बिजली, आकाश की बिजली, प्रयोग में आने वाली बिजली (Electricity) आदि।

प्रश्न 5 वायुकायिक किसे कहते हैं?

उत्तर हवा ही जिन जीवों का शरीर है, उन्हें वायुकायिक कहते हैं। जैसे–पूर्व आदि दिशाओं की वायु।

प्रश्न 6 वनस्पतिकायिक किसे कहते हैं?

उत्तर वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर है, उन्हें वनस्पतिकायिक कहते हैं। जैसे– वृक्ष, लता, फल, फूल, सब्जी, गेहूँ, धान आदि।

प्रश्न 7 त्रसकायिक किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों में स्वेच्छापूर्वक गमनागमन करने का सामर्थ्य है, उन्हें त्रसकायिक कहते हैं। जैसे– द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

दूसरा सिद्धान्त– इन्द्रियाँ पाँच और उनके अर्थ (विषय) पाँच

1. श्रोत्रेन्द्रिय
2. चक्षुरिन्द्रिय
3. घ्राणेन्द्रिय
4. जिह्वेन्द्रिय (रसनेन्द्रिय)
5. स्पर्शेन्द्रिय

पाँच इन्द्रियों के अर्थ (विषय) :-

1. शब्द
2. रूप
3. गन्ध
4. रस
5. स्पर्श

- मैं पाँच इन्द्रियों के विषयों से निर्लिप्त बनूँ।

प्रश्न 1 इन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके माध्यम से आत्मा शब्द, रूप, गंध, रस व स्पर्श का बोध करे, उसे इन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 2 श्रोत्रेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके माध्यम से आत्मा शब्द का बोध करे, उसे श्रोत्रेन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 3 चक्षुरिन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके माध्यम से आत्मा रूप का बोध करे, उसे चक्षुरिन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 4 घ्राणेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके माध्यम से आत्मा गंध का बोध करे, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 5 जिह्वेन्द्रिय (रसनेन्द्रिय) किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके माध्यम से आत्मा रस का बोध करे, उसे जिह्वेन्द्रिय (रसनेन्द्रिय) कहते हैं।

प्रश्न 6 स्पर्शेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके माध्यम से आत्मा स्पर्श का बोध करे, उसे स्पर्शेन्द्रिय कहते हैं।

तीसरा सिद्धान्त– जातियाँ पाँच

1. एकेन्द्रिय जाति
2. द्वीन्द्रिय (बेइन्द्रिय) जाति
3. त्रीन्द्रिय (तेइन्द्रिय) जाति
4. चतुरिन्द्रिय (चउरिन्द्रिय) जाति
5. पंचेन्द्रिय जाति

- मैं पाँच जातियों के परिभ्रमण से मुक्त बनूँ।

प्रश्न 1 जाति किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों की इन्द्रियों की संख्या परस्पर तुल्य हो, उनके समूह को जाति कहते हैं।

प्रश्न 2 एकेन्द्रिय जाति किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों के सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय ही हो, उनके समूह को एकेन्द्रिय जाति कहते हैं। जैसे– मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव।

प्रश्न 3 द्वीन्द्रिय (बेइन्द्रिय) जाति किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों के स्पर्शेन्द्रिय एवं जिह्वेन्द्रिय (रसनेन्द्रिय)–ये दो इन्द्रियाँ ही हों, उनके समूह को द्वीन्द्रिय (बेइन्द्रिय) जाति कहते हैं। जैसे– शंख, सीप, लट, कृमि, अलसिया (वर्षा के समय उत्पन्न जीव) आदि।

प्रश्न 4 त्रीन्द्रिय (तेइन्द्रिय) जाति किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों के स्पर्शेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय (रसनेन्द्रिय) एवं घ्राणेन्द्रिय– ये तीन इन्द्रियाँ ही हों, उनके समूह को त्रीन्द्रिय (तेइन्द्रिय) जाति कहते हैं। जैसे– जूँ, लीख, चींटी, कुंथुआ, खटमल आदि।

प्रश्न 5 चतुरिन्द्रिय (चउरिन्द्रिय) जाति किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों के स्पर्शेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय (रसनेन्द्रिय) घ्राणेन्द्रिय एवं चक्षुरिन्द्रिय– ये चार इन्द्रियाँ ही हों, उनके समूह को चतुरिन्द्रिय (चउरिन्द्रिय) जाति कहते हैं। जैसे– मक्खी, मच्छर, भ्रमर, पतंगा, बिच्छू आदि।

प्रश्न 6 पंचेन्द्रिय जाति किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों के स्पर्शेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय (रसनेन्द्रिय), घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय एवं श्रोत्रेन्द्रिय– ये पाँचों इन्द्रियाँ हों, उनके समूह को पंचेन्द्रिय जाति कहते हैं। जैसे–नैरयिक, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि।

चौथा सिद्धान्त– गतियाँ पाँच

1. नरक गति
2. तिर्यंच गति
3. मनुष्य गति
4. देव गति
5. सिद्धि गति

● मैं शीघ्रातिशीघ्र पंचम गति को प्राप्त करूँ।

प्रश्न 1 गति किसे कहते हैं?

उत्तर जीव मरकर जहाँ जाता है, उसे गति कहते हैं।

प्रश्न 2 नरक गति किसे कहते हैं?

उत्तर जिस गति में जीव स्वकृत घोर पापों के कारण भयंकर कष्ट भोगता है, उसे नरक गति कहते हैं।

प्रश्न 3 तिर्यंच गति किसे कहते हैं?

उत्तर जिस गति में जीव स्वकृत कर्मों के कारण नरक की अपेक्षा कुछ कम कष्ट भोगता है, उसे तिर्यंच गति कहते हैं।

प्रश्न 4 मनुष्य गति किसे कहते हैं?

उत्तर जिस गति में जीव स्वकृत पुण्य के कारण मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है, उसे मनुष्य गति कहते हैं।

प्रश्न 5 देव गति किसे कहते हैं?

उत्तर जिस गति में जीव स्वकृत पुण्य के कारण विशिष्ट भौतिक सुखों वाले स्थान को प्राप्त करता है, उसे देव गति कहते हैं।

प्रश्न 6 सिद्धि गति किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मों से सर्वथा मुक्त आत्मा जहाँ अपने मूल स्वरूप में सदा-सदा के लिए स्थित हो जाती है, उसे सिद्धि गति कहते हैं।

पाँचवाँ सिद्धान्त– वेद तीन

1. स्त्री वेद
2. पुरुष वेद
3. नपुंसक वेद

● मैं अवेदी भाव को प्राप्त करूँ।

प्रश्न 1 वेद किसे कहते हैं?

उत्तर कुशील सेवन की अभिलाषा को वेद कहते हैं।

प्रश्न 2 स्त्री वेद किसे कहते हैं?

उत्तर स्त्री में उत्पन्न होने वाली कुशील सेवन की अभिलाषा को स्त्री वेद कहते हैं।

प्रश्न 3 पुरुष वेद किसे कहते हैं?

उत्तर पुरुष में उत्पन्न होने वाली कुशील सेवन की अभिलाषा को पुरुष वेद कहते हैं।

प्रश्न 4 नपुंसक वेद किसे कहते हैं?

उत्तर नपुंसक में उत्पन्न होने वाली कुशील सेवन की अभिलाषा को नपुंसक वेद कहते हैं।

ज्ञातव्य :- स्त्री वेदी जीव में प्रमुख रूप से पुरुष के साथ ही कुशील सेवन की अभिलाषा उत्पन्न होती है, परन्तु कदाचित् स्त्री अथवा नपुंसक के साथ भी भोगों की अभिलाषा उत्पन्न हो सकती है। उसे भी स्त्री वेद ही कहा जाएगा। इसी प्रकार पुरुष वेदी एवं नपुंसक वेदी जीवों के लिए समझ लेना चाहिए।

छठा सिद्धान्त- कषाय चार

1. क्रोध कषाय
2. मान कषाय
3. माया कषाय
4. लोभ कषाय

● मैं छोटे से छोटा कषाय भी न करूँ।

प्रश्न 1 कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर संसार में भटकाने वाले भावों को कषाय कहते हैं।

प्रश्न 2 क्रोध कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर आक्रोश, आवेश, गुस्सा (Anger) करना आदि को क्रोध कषाय कहते हैं।

प्रश्न 3 मान कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर अहंकार (Ego), घमंड, अभिमान आदि को मान कषाय कहते हैं।

प्रश्न 4 माया कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर छल-कपट, धोखा (Deceit), सच्चाई को छिपाना, बहानेबाजी आदि को माया कषाय कहते हैं।

प्रश्न 5 लोभ कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर आसक्ति, लालच, लगाव (Attachment), भौतिक पदार्थों की आकांक्षा (Greed) आदि को लोभ कषाय कहते हैं।

सातवाँ सिद्धान्त– संज्ञाएँ चार

1. आहार संज्ञा
2. भय संज्ञा
3. मैथुन संज्ञा
4. परिग्रह संज्ञा

● मैं चार संज्ञाओं से दूर हटूँ।

प्रश्न 1 संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर आहार आदि के संबंध में विशिष्ट प्रकार की लालसा आदि को एवं संवेदनाओं को संज्ञा कहते हैं।

प्रश्न 2 आहार संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर आहार संबंधी विशेष लालसा रूप संवेदना को आहार संज्ञा कहते हैं।

प्रश्न 3 भय संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर भय की विशेष संवेदना को भय संज्ञा कहते हैं।

प्रश्न 4 मैथुन संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर मैथुन संबंधी विशेष लालसा रूप संवेदना को मैथुन संज्ञा कहते हैं।

प्रश्न 5 परिग्रह संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर किसी भी वस्तु या व्यक्ति आदि के प्रति विशेष आसक्ति रूप संवेदना को परिग्रह संज्ञा कहते हैं।

आठवाँ सिद्धान्त– लेश्याएँ छह

1. कृष्ण लेश्या
2. नील लेश्या
3. कापोत लेश्या
4. तेजो लेश्या
5. पद्म लेश्या
6. शुक्ल लेश्या

● मैं विशुद्ध लेश्याओं में रमण करूँ।

प्रश्न 1 लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा के शुभाशुभ भावों को लेश्या कहते हैं। लेश्या तेरहवें जीवस्थान तक के जीवों में होती है।

प्रश्न 2 कृष्ण लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर कृष्ण = काला। काले रंग के समान अत्यंत मलिन भावों को कृष्ण लेश्या कहते हैं। यह लेश्या अत्यन्त अशुभ होती है।

प्रश्न 3 नील लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर नील = नीला। नीले रंग के समान मलिन भावों को नील लेश्या कहते हैं। नील लेश्या कृष्ण लेश्या से कम अशुभ किन्तु कापोत लेश्या से ज्यादा अशुभ होती है।

प्रश्न 4 कापोत लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर कापोत = कबूतर के समान। कबूतर की गर्दन के रंग के समान किञ्चित् मलिन भावों को कापोत लेश्या कहते हैं। कापोत लेश्या नील लेश्या से कम अशुभ किन्तु तेजो लेश्या से अशुभ होती है।

प्रश्न 5 तेजो लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर तेज = अग्नि। अग्नि के लाल रंग के समान किञ्चित् निर्मल भावों को तेजो लेश्या कहते हैं। यह पद्म लेश्या से कम शुभ किन्तु कापोत लेश्या से शुभ होती है।

प्रश्न 6 पद्म लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर पद्म = कमल। कमल के पराग कणों की तरह पीले रंग के समान निर्मल भावों को पद्म लेश्या कहते हैं। यह तेजो लेश्या से ज्यादा शुभ किन्तु शुक्ल लेश्या से कम शुभ होती है।

प्रश्न 7 शुक्ल लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर शुक्ल = सफेद। सफेद रंग के समान अत्यंत निर्मल भावों को शुक्ल लेश्या कहते हैं। यह लेश्या अत्यन्त शुभ होती है।

नवाँ सिद्धान्त– मिथ्यात्व दस

1. अधर्म में धर्म संज्ञा (धर्म बुद्धि)
2. धर्म में अधर्म संज्ञा (अधर्म बुद्धि)
3. उन्मार्ग में मार्ग संज्ञा
4. मार्ग में उन्मार्ग संज्ञा
5. अजीवों में जीव संज्ञा
6. जीवों में अजीव संज्ञा

7. असाधुओं में साधु संज्ञा
8. साधुओं में असाधु संज्ञा
9. अमुक्तों में मुक्त संज्ञा
10. मुक्तों में अमुक्त संज्ञा

- मैं मिथ्यात्व का मन-वचन-काया से त्याग करूँ।

प्रश्न-1 मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर मोक्ष का मार्ग बताने वाले सुदेव को, मोक्ष के मार्ग पर पूर्णत: चलने वाले सुगुरु को, मोक्षमार्ग रूपी सुधर्म को एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को न मानना मिथ्यात्व है।

दसवाँ सिद्धान्त- दर्शन तीन

1. सम्यग् दर्शन
2. मिथ्या दर्शन
3. सम्यग् मिथ्या दर्शन

- मेरा सम्यग् दर्शन परम निर्मल हो।

प्रश्न 1 दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप विषयक श्रद्धा-अश्रद्धा को दर्शन कहते हैं।

प्रश्न 2 सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर संपूर्ण श्रद्धा होना सम्यग् दर्शन कहलाता है। सम्यग् दर्शन से युक्त जीव को सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

प्रश्न 3 मिथ्या दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर आंशिक अथवा संपूर्ण अश्रद्धा (विपरीत श्रद्धा) होना मिथ्या दर्शन कहलाता है। मिथ्या दर्शन से युक्त जीव को मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्रश्न 4 सम्यग् मिथ्या दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एवं जीव-अजीव आदि नौ सद्भाव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप पर श्रद्धा और अश्रद्धा- दोनों का ही न होना सम्यग् मिथ्या दर्शन कहलाता है। सम्यग् मिथ्या दर्शन से युक्त जीव को सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

ग्यारहवाँ सिद्धान्त– उपयोग बारह

उपयोग के दो भेद :–

1. साकारोपयोग
2. अनाकारोपयोग

साकारोपयोग के आठ भेद :–

1. आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान)
2. श्रुतज्ञान
3. अवधिज्ञान
4. मन:पर्यवज्ञान
5. केवलज्ञान
6. मतिअज्ञान
7. श्रुतअज्ञान
8. विभंगज्ञान

अनाकारोपयोग के चार भेद :–

1. चक्षुदर्शन
2. अचक्षुदर्शन
3. अवधिदर्शन
4. केवलदर्शन

● मैं विशिष्ट ज्ञान–दर्शन को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करूँ।

प्रश्न 1 उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा की बोध रूप प्रवृत्ति को उपयोग कहते हैं।

प्रश्न 2 साकार उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर विशेष धर्मों का बोध साकार उपयोग है। जिस स्वभाव के कारण प्रत्येक पदार्थ अन्य पदार्थों से भिन्न होता है, उसे विशेष धर्म कहते हैं।

प्रश्न 3 अनाकार उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर सत्ता रूप सामान्य धर्म (स्वभाव) का बोध अनाकार उपयोग है। जो स्वभाव लोक–अलोक के सभी पदार्थों में पाया जाता है, उसे सामान्य धर्म कहते हैं।

प्रश्न 4 आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान) किसे कहते हैं?

उत्तर अभि = अभिमुख होकर; नि = नियत, निश्चित; बोध = जानना। पाँच

इन्द्रियों एवं मन के द्वारा अपने-अपने विषय के अभिमुख होकर जो नियत बोध किया जाता है, वह आभिनिबोधिकज्ञान कहलाता है। यह सम्यग्दृष्टि जीवों को ही होता है।

प्रश्न 5 श्रुतज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर आभिनिबोधिक ज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थ को स्पष्टतर जानना श्रुतज्ञान कहलाता है। यह सम्यग्दृष्टि जीवों को ही होता है।

प्रश्न 6 अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर अवधि = मर्यादा। मर्यादा के दो अर्थ हैं-

(i) रूपी पदार्थों को ही जान सकता है, अरूपी को नहीं।

(ii) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा।

इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों के विशेष धर्म को जानना अवधिज्ञान कहलाता है। यह सम्यग्दृष्टि जीवों को ही होता है।

प्रश्न 7 मन:पर्यवज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर मन:पर्यव = मन की पर्यायें (मन के भाव)। इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से मनुष्य क्षेत्र में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों (तिर्यंच, मनुष्य व देव) के मन के भावों को जानना मन:पर्यवज्ञान कहलाता है। यह साधु-साध्वियों को ही होता है।

प्रश्न 8 केवलज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर केवल = सम्पूर्ण। सभी पदार्थों के भूत, वर्तमान एवं भविष्य संबंधी सम्पूर्ण विशेष धर्मों को एक साथ स्पष्ट जानना केवलज्ञान कहलाता है। यह ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करने वाली आत्माओं को ही होता है।

प्रश्न 9 मतिअज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों को इन्द्रियों एवं मन की सहायता से उत्पन्न होने वाली मति को मतिअज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 10 श्रुतअज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों को इन्द्रियों एवं मन की सहायता से उत्पन्न होने वाले श्रुत को श्रुतअज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 11 विभंगज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों को इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक होने वाले रूपी पदार्थों के बोध को विभंगज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 12 चक्षुदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर चक्षुरिन्द्रिय से होने वाला सत्ता रूप सामान्य धर्म का बोध चक्षुदर्शन कहलाता है।

प्रश्न 13 अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों एवं मन से होने वाला सत्ता रूप सामान्य धर्म का बोध अचक्षुदर्शन कहलाता है।

प्रश्न 14 अवधिदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों के सत्ता रूप सामान्य धर्म का बोध अवधिदर्शन कहलाता है।

प्रश्न 15 केवलदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर सभी पदार्थों के भूत, वर्तमान एवं भविष्य संबंधी सत्ता रूप सामान्य धर्म का एक साथ बोध केवलदर्शन कहलाता है।

बारहवाँ सिद्धान्त– कर्म आठ

1. ज्ञानावरणीय कर्म
2. दर्शनावरणीय कर्म
3. वेदनीय कर्म
4. मोहनीय कर्म
5. आयुष्य कर्म
6. नाम कर्म
7. गोत्र कर्म
8. अन्तराय कर्म

- मैं मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त करूँ।

प्रश्न 1 कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मा के साथ बंधे हुए अथवा बंध रहे कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को कर्म कहते हैं।

प्रश्न 2 कार्मण वर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर पुद्गलों के अनेक प्रकार हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के पुद्गल भिन्न-भिन्न कार्यों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे- जिन पुद्गलों से औदारिक शरीर बनाया जाता है, उन्हें औदारिक वर्गणा (समुदाय) के पुद्गल कहते हैं। जिन

पुद्गलों से वैक्रिय शरीर बनाया जाता है, उन्हें वैक्रिय वर्गणा के पुद्गल कहते हैं। इसी प्रकार जिन पुद्गलों से कार्मण शरीर (कर्म) बनाया जाता है, उन्हें कार्मण वर्गणा कहते हैं।

प्रश्न 3 ज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म के उदय से आत्मा के ज्ञान गुण पर न्यूनाधिक रूप से आवरण हो, उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न 4 दर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म के उदय से आत्मा के दर्शन गुण पर न्यूनाधिक रूप से आवरण हो, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न 5 वेदनीय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर वेदन = कर्मों का फल भोगना। जिस कर्म के उदय से आत्मा को पाँच इन्द्रिय व मनोजन्य साता-असाता की प्राप्ति (वेदन) हो, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न 6 मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर मोह = मोहित होना/मूर्च्छित होना। जिस कर्म के उदय से आत्मा मोहित हो अर्थात् सत्-असत्, अच्छे-बुरे, हित-अहित के ज्ञान से रहित हो (अथवा हित-अहित को जानकर भी हित में पूर्ण रूप से प्रवृत्त और अहित से पूर्ण रूप से निवृत्त न हो पाए) उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न 7 आयुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म के उदय से आत्मा किसी भव में रुकी रहे, उसे आयुष्य कर्म कहते हैं।

प्रश्न 8 नाम कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म के उदय से आत्मा शुभ-अशुभ गति, जाति आदि विविध पर्यायों को प्राप्त कर उनका अनुभव करे, उसे नाम कर्म कहते हैं।

प्रश्न 9 गोत्र कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म के उदय से आत्मा उच्च या नीच-जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ व ऐश्वर्य प्राप्त करे अथवा उच्च या नीच कहलाए जाने योग्य हो, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

प्रश्न 10 अन्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म के उदय से आत्मा को दान आदि संबंधी विघ्न उपस्थित हो, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

तेरहवाँ सिद्धान्त– शरीर पाँच

1. औदारिक शरीर
2. वैक्रिय शरीर
3. आहारक शरीर
4. तैजस शरीर
5. कार्मण शरीर

● मैं शरीर की ममता का त्याग करूँ।

प्रश्न 1 शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर जो प्रतिसमय जीर्ण–शीर्ण होता रहता है, उसे शरीर कहते हैं।

प्रश्न 2 औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं अथवा उदार अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्रश्न 3 वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं अथवा विक्रिया = विविध या विशिष्ट प्रकार की क्रिया। जिस शरीर से विविध या विशिष्ट प्रकार (छोटा–बड़ा, एक–अनेक, दृश्य–अदृश्य आदि रूप) की क्रियाएँ की जा सकती हैं, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं।

प्रश्न 4 आहारक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर आहारक वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को आहारक शरीर कहते हैं। आहारक लब्धिधारी मुनिराज 4 कारणों से आहारक शरीर निर्माण करते हैं– 1. तीर्थंकरों की ऋद्धि दर्शन 2. जीवदया 3. संशय निवारण 4. सूक्ष्म पदार्थों में अवगाहन (सूक्ष्म पदार्थों को समझने के लिए)।

प्रश्न 5 तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर तैजस वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को तैजस शरीर कहते हैं।

प्रश्न 6 कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर कार्मण वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को कार्मण शरीर कहते हैं। कर्मों के समुदाय को ही कार्मण शरीर कहते हैं।

चौदहवाँ सिद्धान्त– संहनन छह

1. वज्रऋषभनाराच संहनन
2. ऋषभनाराच संहनन
3. नाराच संहनन
4. अर्द्धनाराच संहनन
5. कीलिका संहनन
6. सेवार्त्त संहनन

- वर्तमान संहनन से भी धर्माराधना संभव है।

प्रश्न 1 संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर औदारिक शरीर के पुद्गलों का किसी निश्चित दृढ़ता के साथ एकत्रित रहना संहनन है।

प्रश्न 2 वज्रऋषभनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर वज्र=कील, ऋषभ=वेष्टन पट्ट (लपेटने का पट्टा), नाराच=दोनों ओर से मर्कट बंध, सहंनन=दृढ़ता। दो हड्डियों को दोनों ओर से मर्कट बंध द्वारा जोड़कर, उन पर पट्ट की आकृति वाली हड्डी का वेष्टन करके (चारों ओर से लपेट करके), वज्र से उन्हें भेद कर जोड़ दिया जाए– इस प्रकार की दृढ़ता को वज्रऋषभनाराच संहनन कहते हैं।

ज्ञातव्य– वज्रऋषभानाराच आदि संहनन वाले जीवों की हड्डियाँ उपर्युक्त प्रकार से होती हैं– ऐसा नहीं समझना चाहिए। उपर्युक्त प्रकार की दृढ़ता के समान जीव का शरीर दृढ़ होता है– ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न 3 मर्कट बंध किसे कहते हैं?

उत्तर मर्कट=बन्दर। बन्दर का बच्चा अपनी माता को जिस तरह पकड़ता है, उस तरह के बंध को मर्कट बंध कहते हैं।

प्रश्न 4 ऋषभनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर दो हड्डियों को दोनों ओर मर्कट बंध द्वारा जोड़कर, उन पर पट्ट की आकृति वाली हड्डी का वेष्टन कर दिया जाए– इस प्रकार की दृढ़ता को ऋषभनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न 5 नाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर दो हड्डियों को दोनों ओर से मर्कट बंध द्वारा जोड़ दिया जाए–इस प्रकार की दृढ़ता को नाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न 6 अर्द्धनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर दो हड्डियों को एक ओर से मर्कट बंध द्वारा जोड़कर, दूसरी ओर से कील द्वारा भेद कर जोड़ दिया जाए- इस प्रकार की दृढ़ता को अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं।

प्रश्न 7 कीलिका संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर दो हड्डियों को कील द्वारा जोड़ दिया जाए- इस प्रकार की दृढ़ता को कीलिका संहनन कहते हैं।

प्रश्न 8 सेवार्त्त सहंनन किसे कहते हैं?

उत्तर दो हड्डियाँ पर्यन्त भाग (समाप्ति स्थान) में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती हों- इस प्रकार की दृढ़ता को सेवार्त्त संहनन कहते हैं। वर्तमान में भरत क्षेत्र में उत्पन्न मनुष्यों में सेवार्त्त संहनन ही पाया जाता है।

पन्द्रहवाँ सिद्धान्त- संस्थान छह

1. समचतुरस्र संस्थान
2. न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान
3. सादि संस्थान
4. कुब्ज संस्थान
5. वामन संस्थान
6. हुण्ड संस्थान

- संस्थान की सुन्दरता में सुख नहीं है।

प्रश्न 1 संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर आकृति को संस्थान कहते हैं। इस प्रकरण में यहाँ जीव संबंधी संस्थान का वर्णन है।

प्रश्न 2 समचतुरस्र संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर सम = समान, शरीर के लक्षण के अनुसार प्रमाणोपेत; चतुर् = चार; अस्र = कोण (यहाँ अस्र शब्द से चारों दिशाओं के सम्पूर्ण शरीर-अवयवों को ग्रहण किया गया है) जिस शरीर में सभी अवयव उत्तम (शास्त्रोक्त) प्रमाण युक्त हों, उस शरीर की आकृति को समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

प्रश्न 3 न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर न्यग्रोध = वट वृक्ष (ऊपर से विशाल, नीचे से हीन); परिमण्डल = घेरा, विस्तार। जिस शरीर में ऊपर के सभी अवयव (जैसे-सिर, गर्दन आदि) उत्तम प्रमाण युक्त हों, परन्तु नीचे के अवयव (जैसे-पैर, ऊरु आदि) हीन

हों, उस शरीर की आकृति को न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के नाभि के ऊपर का भाग उत्तम प्रमाण युक्त एवं नीचे का भाग हीन हो, वह मनुष्य न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान युक्त है।

प्रश्न 4 मछली आदि जलचर जीवों में या इसी तरह कुछ अन्य जीवों में शरीर के ऊपर और नीचे से संबंधित परिभाषा किस प्रकार घटित होगी?

उत्तर ग्रन्थों में मुख्यत: मनुष्य पर संस्थानों की परिभाषाएँ घटित की गई हैं। मछली आदि अन्य जीवों में भी यह परिभाषा उपलक्षण से घटित हो सकती है। यथा- मछली के आगे के सिर, मुँह आदि का उत्तम प्रमाण युक्त होना तथा पूँछ आदि पीछे के अवयवों का हीन होना न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान है। इसी तरह अन्य विभिन्न आकृति वाले जीवों के विषय में यह परिभाषा एवं अन्य परिभाषाएँ यथायोग्य रूप से घटित कर लेनी चाहिए।

प्रश्न 5 सादि संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर सादि = शाल्मली वृक्ष इस वृक्ष का स्कंध (नीचे का भाग) मोटा होता है, परन्तु स्कंध के अनुरूप ऊपर का भाग विशाल नहीं होतों जिस शरीर में नीचे के सभी अवयव (जैसे-पैर, ऊरु आदि) उत्तम प्रमाण युक्त हों, परन्तु ऊपर के अवयव (जैसे-सिर, गर्दन आदि) हीन हों, उस शरीर की आकृति को सादि संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के नाभि के नीचे का भाग उत्तम प्रमाण युक्त एवं ऊपर का भाग हीन हो, वह मनुष्य सादि संस्थान युक्त है।

प्रश्न 6 कुब्ज संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शरीर में मध्य के सभी अवयव (जैसे-पेट, पीठ आदि) उत्तम प्रमाण युक्त हों, परन्तु शेष अवयव हीन हों, उस शरीर की आकृति को कुब्ज संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के पेट, छाती, पीठ आदि अवयव उत्तम प्रमाण युक्त एवं सिर, गर्दन, हाथ, पैर आदि अवयव हीन हों, वह मनुष्य कुब्ज संस्थान युक्त है।

प्रश्न 7 वामन संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शरीर में मध्य के अवयव (जैसे-पेट, पीठ आदि) हीन हों, परन्तु शेष सभी अवयव उत्तम प्रमाण युक्त हों, उस शरीर की आकृति को वामन संस्थान कहते हैं। जैसे- जिस मनुष्य के पेट, छाती, पीठ आदि अवयव हीन एवं सिर, गर्दन, हाथ, पैर आदि अवयव उत्तम प्रमाण युक्त हों, वह मनुष्य वामन संस्थान युक्त है।

प्रश्न 8 हुण्ड संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शरीर में प्राय: सभी अवयव प्रमाण के अनुरूप न हों, उस शरीर की

आकृति को हुण्ड संस्थान कहते हैं। वर्तमान में इस भरत क्षेत्र में उत्पन्न मनुष्यों में हुण्ड संस्थान ही पाया जाता है।

सोलहवाँ सिद्धान्त– पर्याप्तियाँ पाँच अथवा छह

1. आहार पर्याप्ति
2. शरीर पर्याप्ति
3. इन्द्रिय पर्याप्ति
4. आनापान पर्याप्ति
5. भाषामन पर्याप्ति

भाषा एवं मन को अलग-अलग गिनने से छह पर्याप्तियाँ होती हैं

- मैं पुण्ययोग से प्राप्त पर्याप्तियों का धर्माराधना में उपयोग करूँ।

प्रश्न 1 पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर पर्याप्ति = सामर्थ्य, योग्यता। आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि संबंधी सामर्थ्य से सम्पन्न होने को पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 2 आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर आहार ग्रहण करने के सामर्थ्य से सम्पन्न होने को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 3 शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर से कार्य करने के सामर्थ्य से सम्पन्न होने को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 4 इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर इन्द्रियों का प्रयोग करने के सामर्थ्य से सम्पन्न होने को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 5 आनापान पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर आन = श्वास लेना (उच्छ्वास), अपान = श्वास छोड़ना (नि:श्वास)। आन एवं अपान के सामर्थ्य से सम्पन्न होने को आनापान पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 6 भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर भाषा का प्रयोग करने के सामर्थ्य से सम्पन्न होने को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 7 मन पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर मन का प्रयोग करने के सामर्थ्य से सम्पन्न होने को मन पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 8 पर्याप्तियों की निश्चित संख्या न कहकर पाँच अथवा छह कहने का क्या कारण है?

उत्तर पर्याप्तियों की संख्या के विषय में आगमिक उल्लेख पाँच पर्याप्तियों का है। श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र में नैरयिक एवं गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय के वर्णन में 'छ पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ' पाठ वर्तमान में मिलता है, किन्तु यहाँ भी पाँच पर्याप्ति संबंधी पाठान्तर है। इस तरह अधिकांश आगमिक वर्णन पाँच पर्याप्तियों का है, जिसमें भाषा मन पर्याप्ति को एक साथ ग्रहण किया है। इस आगमिक वर्णन का तत्त्वज्ञों को सतत अवबोध रहे, एतदर्थ पाँच पर्याप्तियों का कथन वैकल्पिक रूप से स्वीकार किया गया है। आगमिक व्याख्याओं इत्यादि में छह पर्याप्तियाँ मानी हैं एवं छह मानने से असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पर्याप्ति वर्णन करते समय एवं अन्य अनेक स्थानों के वर्णन में सुगमता रहती है। साथ ही श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र में प्राप्त वर्तमान सूत्र पाठ में छह पर्याप्तियों का वर्णन मिल ही रहा है, अत: वैकल्पिक रूप से छह पर्याप्तियाँ भी स्वीकार की गई हैं।

प्रश्न 9 पाँच पर्याप्तियों का वर्णन आगमों में कहाँ-कहाँ है?

उत्तर श्री भगवती सूत्र, शतक 3, उद्देशक 1, सूत्र 16
श्री भगवती सूत्र, शतक 3, उद्देशक 1, सूत्र 45
श्री भगवती सूत्र, शतक 3, उद्देशक 2, सूत्र 24-25
श्री भगवती सूत्र, शतक 6, उद्देशक 4, सूत्र 19
श्री भगवती सूत्र, शतक 16, उद्देशक 5, सूत्र 16
श्री भगवती सूत्र, शतक 18, उद्देशक 1, सूत्र 62
श्री भगवती सूत्र, शतक 18, उद्देशक 1, सूत्र 102
श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, प्रथम वर्ग, सूत्र 148
श्री राजप्रश्नीय सूत्र, सूत्र 274-275
श्री राजप्रश्नीय सूत्र, सूत्र 797
श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति 3, सूत्र 440-441
श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति 1, सूत्र 129-133
श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति 1, सूत्र 135-136
श्री प्रज्ञापना सूत्र, पद 28, सूत्र 1904-1906
श्री पुष्पिका सूत्र, सूत्र 15
श्री पुष्पिका सूत्र, सूत्र 121
श्री पुष्पिका सूत्र, सूत्र 24

(2) बीस विहरमान (तीर्थंकर)

1. श्री सीमंधर स्वामीजी
2. श्री युगमंधर स्वामीजी
3. श्री बाहु स्वामीजी
4. श्री सुबाहु स्वामीजी
5. श्री सुजात स्वामीजी
6. श्री स्वयंप्रभ स्वामीजी
7. श्री ऋषभानन स्वामीनी
8. श्री अनंतवीर्य स्वामीजी
9. श्री सूरप्रभ स्वामीजी
10. श्री विशालधर स्वामीजी
11. श्री वज्रधर स्वामीजी
12. श्री चन्द्रानन स्वामीजी
13. श्री चन्द्रबाहु स्वामीजी
14. श्री भुजंग स्वामीजी
15. श्री ईश्वर स्वामीजी
16. श्री नेमप्रभ स्वामीजी
17. श्री वीरसेन स्वामीजी
18. श्री महाभद्र स्वामीजी
19. श्री देवयश स्वामीजी
20. श्री अजितवीर्य स्वामीजी

ये बीस तीर्थंकर अभी महाविदेह क्षेत्र में विचर रहे हैं इसलिए इनको 'विहरमान' कहते हैं।

(3) भगवान महावीर के ग्यारह गणधर

1. श्री इन्द्रभूतिजी
2. श्री अग्निभूतिजी
3. श्री वायुभूतिजी
4. श्री व्यक्तस्वामीजी
5. श्री सुधर्मास्वामीजी
6. श्री मण्डितपुत्रजी
7. श्री मौर्यपुत्रजी
8. श्री अकम्पितजी
9. श्री अचलभ्राताजी
10. श्री मेतार्यजी
11. श्री प्रभासजी।

(4) अनमोल शिक्षा

1. दीजे दान
2. लीजे यश
3. कीजे परोपकार
4. खाइजे गम
5. आदरजे धर्म
6. ध्याइजे अरिहन्त देव
7. पीजे प्रेम-रस
8. पालजे शील
9. टालने कुसंगत
10. छोड़जे पाप
11. सेवजे निर्ग्रन्थ गुरु
12. रमजे स्वाध्याय ध्यान में।

(5) शृंगार के 12 बोल

1. शरीर का शृंगार शील
2. शील का शृंगार तप
3. तप का शृंगार क्षमा
4. क्षमा का शृंगार ज्ञान
5. ज्ञान का शृंगार मौन
6. मौन का शृंगार शुभ ध्यान
7. शुभ ध्यान का शृंगार संवर
8. संवर का शृंगार निर्जरा
9. निर्जरा का शृंगार केवल ज्ञान
10. केवल ज्ञान का शृंगार अक्रिया
11. अक्रिया का शृंगार मोक्ष
12. मोक्ष का शृंगार अव्याबाध सुख।

(6) महापापी के 12 बोल

1. आत्मघाती	महापापी
2. विश्वास घाती	महापापी
3. गुरु द्रोही	महापापी
4. कृतघ्नी	महापापी
5. झूठी सलाह देने वाला	महापापी
6. झूठी साक्षी देने वाला	महापापी
7. हिंसा में धर्म बताने वाला	महापापी
8. सरोवर की पाल तोड़ने वाला	महापापी
9. जंगल में आग लगाने वाला	महापापी
10. हरा-भरा वन कटाने वाला	महापापी
11. बाल हत्या करने वाला	महापापी
12. सती-साध्वी का शील भंग करने वाला	महापापी

कथा विभाग

(1) महासती चन्दनबाला

परिचय- चम्पानगरी में महाराजा 'दधिवाहन' राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम 'धारिणी' एवम् पुत्री का नाम 'वसुमति' था। उनकी पुत्री गुण, रूप, शील तथा सुलक्षणों से सम्पन्न होने के साथ राजा-रानी की अतिप्रिय कन्या थी। वह सचमुच दिव्य गुणों की मूर्ति थी।

चम्पानगरी पर आक्रमण- कौशाम्बी नगरी में राजा शतानीक राज्य करता था। उसकी महारानी का नाम मृगावती था। दधिवाहन राजा शतानीक के सगे साढू थे। दोनों की रानियाँ आपस में बहनें थीं। फिर भी शतानीक ने एक समय अचानक चम्पानगरी पर आक्रमण कर दिया। दधिवाहन को जैसे ही आक्रमण का पता चला वह स्तब्ध रह गया तथा सामना नहीं कर सकने के कारण युद्ध में उनकी हार हुई। पराजित दधिवाहन ने जंगल में शरण ली।

धारिणी-वसुमति का वनगमन- महारानी धारिणी और वसुमति ने देखा कि महाराज वन में चले गये हैं और नगरी तेजी से लूटी जा रही है, उस समय धारिणी ने चन्दनबाला के स्वप्न का उल्लेख करते हुए कहा कि तुमने जो पिछली रात्रि को स्वप्न देखा कि - चंपानगरी पर एकदम आपत्तियों की बिजलियाँ गिर रही हैं, पिताजी हम सबको अनाथ-असहाय छोड़कर चले गये हैं। पूरी नगरी दुःख सागर में डूब रही है....! वही स्वप्न सामने उपस्थित हो गया है। इस प्रकार का चिंतन कर रही थी कि एक सारथी उनके रूप पर आसक्त होकर रानी धारिणी एवम् राजकुमारी वसुमति का धोखे से अपहरण कर रथ में बिठा कर जंगल की ओर चल पड़ा।

धारिणी की वसुमति को शिक्षा- मार्ग में धारिणी ने धैर्यपूर्वक अपनी पुत्री को शिक्षा देते हुए कहा- धैर्य धारण करो, प्रभु- स्मरण करो! पता नहीं हमारे साथ कब क्या हो जाय? भाग्य कहाँ ले जाये ? पर दुःख में हिम्मत मत हारना और अपने धर्म पर सदा दृढ़ रहना। वीर-बाला अपनी रक्षा स्वयं करती है।

धारिणी का बलिदान- वन के मध्य पहुँचने पर एकान्त स्थान देख सारथी ने अपनी मलिन भावना धारिणी के सामने रखी। धारिणी ने नमस्कार मन्त्र की शरण लेकर सारथी को निर्भीकता से उत्तर दिया कि चाहे हमारे प्राण भी चले जायें किन्तु हम अपने शीलव्रत से किंचित भी नहीं डिगेंगी। इस उत्तर का सारथी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह अपनी मलिन भावना को लिये जैसे ही आगे बढ़ा कि धारिणी ने वसुमति को सदाचार पालन में दृढ़ रहने की अन्तिम शिक्षा देते हुए शील रक्षा के लिए संथारापूर्वक अपनी जबान खींचकर अपने प्राणों का

बलिदान कर दिया।

वसुमति चन्दनबाला की बाजार में बिक्री- ऐसा दृश्य देखकर चन्दन बाला अपनी माता का अनुसरण करने की तैयारी करने लगी। यह सब देखकर सारथी स्तब्ध रह गया और उसका हृदय परिवर्तित हो गया। उसने कहा- राजकुमारी! तुम डरो मत, मैं तुम्हें अपनी पुत्री मानता हूँ, प्रसन्नता पूर्वक मेरे घर चलो। इस प्रकार आश्वस्त कर सारथी वसुमति को लेकर कौशाम्बी पहुँचा।

उन्हें देखकर सारथी पत्नी क्रोधित हुई और कहा कि मैं तो समझती थी कि चम्पापुरी से स्वर्ण, मणि, हीरे-मोती आदि लूटकर लाओगे, परन्तु आये भी तो ऐसा माल लेकर आये जो मेरे घर को ही लूट ले। जब तक आप इसे बेच कर 20 लाख मोहरें लाकर नहीं देंगे तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।

सारथी ने अपनी पत्नी को बहुत समझाया परन्तु वह टस से मस नहीं हुई। यह देखकर वसुमति सारथी को लेकर बाजार में आकर खड़ी हो गई।

जो कोई भी बाजार से निकलता वसुमति का शील-सौन्दर्य देखकर मोहित होकर बोली लगाता किन्तु 20 लाख मोहरें दाम सुनकर लौट जाता। तब कौशाम्बी की प्रसिद्ध गणिका वसुमति की सुन्दरता को देखकर उसे खरीदने को तत्पर हुई।

वेश्या की तड़क-भड़क देखकर उसका हृदय घबरा गया और उसके साथ जाने के लिए इंकार करने लगी। तब वेश्या ने जबरदस्ती हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ खींचा तो वृक्ष पर बैठे हुए बंदरों ने उस पर हमला बोल दिया। वसुमति से उसकी लहू-लुहान हालत देखी नहीं गई। उसने दौड़कर बंदरों को भगाया और वेश्या की रक्षा की तथा उसे दुष्कर्म छोड़ने की प्रेरणा दी। वेश्या ने दृढ़ संकल्प करके चन्दना के चरणों को छुआ और जीवन भर के लिए दुष्कर्म का त्याग कर दिया।

उसी समय कौशाम्बी के कौट्याधिपति धनावह सेठ उधर से निकले। उनकी सरल, पारखी नजरों ने चन्दना को देखा तो उसकी आँखें सजल हो गई। यह तो दासी नहीं राजपुत्री या सेठ की कन्या दिखाई देती है। कहीं कोई हीन कुल वाला इसे खरीद न ले, इसके कुल शील पर कोई आपदा न आवे, इन पवित्र भावों से उसे खरीद लिया।

धनावह सेठ के घर में- धनावह सेठ उसे लेकर अपने घर पहुँचे। उनकी पत्नी का नाम मूला था। मूला से कहा- यह लो प्रिये! यह गुणवती कन्या। हमारे कोई संतान नहीं है, इससे अब हम अपनी सन्तान की भावना पूरी करें। मूला ने भी वसुमति को पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया। वसुमति सभी दुःखों को भूलकर उन्हें माता-पिता मानकर सेवा करने लगी।

नया नाम चन्दना- धनावह सेठ ने वसुमती से पूछा, बेटी तुम्हारा नाम क्या है? पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, जब उसने अपना पुराना नाम-परिचय नहीं बताया तो उसके शील व स्वभाव की शीतलता, सौम्यता, विनय तथा चन्दन के समान अनेक गुण वाली देखकर धनावह सेठ उसे प्यार से 'चन्दना' कहकर पुकारने लगे। यही नाम आगे चलकर चन्दन बाला नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सेवा और कृतज्ञता- एक दिन मध्याह्न के समय धनावह सेठ बाहर से आये। उन्होंने दासी से हाथ-पैर धोने के लिए पानी लाने को कहा। दासी किसी कार्य में व्यस्त थी। चन्दना ने पिताजी की वाणी सुनी तो स्वयं जल लेकर दौड़ आई। सेठ बहुत थका हुआ था तथा धूप से क्लान्त लग रहा था। पितृभक्ति-वश चन्दना ने स्वयं ही जल लेकर पिताजी के पैर धोने लगी, उसके लम्बे सघन केश खुले थे, नीचे झुकने पर भूमि पर लग गये। तब धनावह ने सहजभाव से चन्दना की खुली केश राशि को अपने हाथों में पकड़कर उन्हें बाँध दिया।

मूला सेठानी यह सब देख रही थी, उसका पापी हृदय कल्पना में डूब गया। चन्दना की सहज भक्ति और धनावह का शुद्ध स्नेहपूर्ण व्यवहार उसके हृदय में फैली दुर्भावना और आशंका की घास में आग की तरह फैल गया।

कष्ट के तीन दिन तलघर में- मूला ने अवसर पाकर चन्दना के हाथ-पैर बेड़ियों से जकड़ दिये। उसके भ्रमर से काले केश को उस्तरे से मुंडा कर, तन पर पुराने वस्त्र लपेट कर भोंयरे (तलघर) में डाल दिया और ताला लगा दिया। घर के सब दास-दासियों से कह दिया कि कोई भी सेठ को यह न बतावे, यदि कोई बताएगा तो कठोर दण्ड दिया जाएगा। इतना सब करके मूला अपने पीहर चली गई। सेठ धनावह कौशाम्बी के बाहर गया हुआ था।

चन्दना को भूमिगृह में पड़े पड़े तीन दिन बीत गये। चौथे दिन धनावह बाहर से नगर में आया, घर सूना देखा, चन्दना भी दिखाई न दी। इधर-उधर जाकर सेठ ने पुकारा- चन्दना! चन्दना ! किन्तु चन्दना न मिली। तब सेठ ने दास-दासियों को बुलाकर रोष पूर्वक कहा यदि कोई जानते हुए भी चन्दना की स्थिति नहीं बतायेगा तो कठोर दण्ड दिया जाएगा। यह सुनकर बूढ़ी दासी ने सोचा संकट दोनों तरफ है। सेठानी रुष्ट होकर मेरा क्या बिगाड़ लेगी, मैं तो वैसे ही बूढ़ी हो चुकी हूँ। मेरी मृत्यु से भी चन्दना बच जाय तो उस सुशील कन्या को बचा लेना चाहिए। यह विचार कर उसने सेठजी को सारी बात बता दी। यह स्थिति सुनकर सेठजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने ताला तोड़ा और चंदना को भोंयरे से बाहर निकाला। चंदना कांपती आवाज से बोली-पिताजी! मुझे कड़ी भूख लग रही है, मैं तीन दिन से भूखी हूँ, पहले मुझे कुछ भोजन ला दो। सेठजी अशांत व उद्विग्न हृदय से भोजन लेने गये, किन्तु उन्हें कुछ नहीं मिला उनकी दृष्टि में पशुओं के लिए पकाए हुए उड़द का भोजन आया। उन्होंने वहीं रखे एक सूप के कोने में उड़द के बाकुले लेकर चंदना को भोजन के लिए दे दिए और उसकी बेड़ियाँ तुड़वाने के लिए लुहार को बुलाने स्वयं ही चल दिए।

आँखों में आँसू- चंदना सूप में रखे हुए उड़द के बाकुलों को लेकर देहली में पहुँची। एक पैर देहली के भीतर तथा एक पैर देहली के बाहर रखकर, चौखट का सहारा लेकर खड़ी हो गई। उस दशा में अपनी पिछली सारी बातें स्मरण में आने लगी। कहाँ तो मेरी माता धारिणी और कहाँ मूला सेठानी ? कहाँ मेरा राजघराना और कहाँ भोंयरे में तीन दिन की जेल ? अरे ! मैंने पूर्व भव में न जाने कैसे कर्म किये ? जिनका मुझे ऐसा फल भोगना पड़ रहा है। मैं सोचती थी कि अब धनावह सेठ के घर पहुँचकर मेरे दुःखों का अन्त आ गया है, परन्तु कर्म न जाने कितने कठोर हैं कि वे अधिक से अधिक दुःख दे रहे हैं। मूला सेठानी पीहर से लौटने पर मेरे साथ कैसा व्यवहार करेगी ? ऐसा सोचते-सोचते उसकी आँखों से आँसू बह चले।

भगवान का पारणा- इधर भगवान महावीर को दीक्षा लिए ग्यारह वर्ष हो चुके थे। अब केवलज्ञान उत्पन्न होने में एक वर्ष से कुछ अधिक समय शेष रह गया था। भगवान अपने पूर्व भवों के कर्मों को क्षय करने के लिए कठोर तपश्चर्याएँ कर रहे थे। इस बार उन्होंने तेरह बोल का दुष्कर अभिग्रह ग्रहण किया।

सूप के कोने में उड़द के बाकुले हो। बहराने वाली (दान देने वाली) देहली से एक पैर बाहर तथा दूसरा पैर भीतर करके चौखट के सहारे खड़ी हो। तीसरे प्रहर में जब सभी भिखारी भिक्षा लेकर लौट गये हों। अविवाहिता हो। राजकन्या हो। बाजार में बिकी हुई हो (दासी अवस्था को प्राप्त हो)। हाथों में हथकड़ी हो। पैरों में बेड़ी हो। सिर मुंडा हुआ हो। शरीर पर काछ पहने हुए हो। तीन दिन की भूखी हो। आँखों में आँसू हो।

इन अभिग्रहों को लिये भगवान प्रतिदिन नगर में घूमते और अभिग्रह पूर्ण न होने से लौट जाते थे। कौशाम्बी की महारानी मृगावती और महामंत्री की स्त्री ने भी बहुत उपाय किये। उनके कहने से महाराज और महामंत्री ने भी नैमित्तिकों से पूछकर अभिग्रह जानने का प्रयत्न किया, पर पता न चल सका। भगवान को अभिग्रह लिए पाँच माह और पच्चीस दिन व्यतीत हो गए। श्रमण महावीर ध्यान की स्थिति पूर्ण कर नगर में भिक्षार्थ पर्यटन करते हुए धनावह सेठ के भवन की ओर जा रहे थे। आज वन्दिनी नारी के मुक्ति दिवस की बेला आ गई थी। छब्बीसवें दिन भगवान चंदना के यहाँ पधारे। उसने सूप में रहे हुए बाकुलों को दिखाते अत्यंत भक्तिपूर्वक कहा- ''भगवन्! यद्यपि ये आपको दान देने योग्य नहीं है, फिर भी यदि ये आपको कल्पते हों तो इन्हें ग्रहण करें।'' अभिग्रह पूर्ण होने पर भगवान ने आहार ग्रहण किया। चंदना ने अत्यंत हर्ष के साथ भगवान को बाकुले बहरा दिये। प्रभु ने पारणा किया।

भगवान महावीर का यह घोर अभिग्रह केवल उनकी कठोर तपः साधना का अंशमात्र बनकर ही नहीं रहा अपितु इस अभिग्रह ने युग की हवा बदल दी। अभिशाप ग्रस्त नारी जाति के उद्धार और कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। नारी जाति को दासता से मुक्ति दिलाने में मुक्ति के संदेश वाहक भगवान महावीर का यह अभिग्रह ऐतिहासिक महत्व रखता है।

दुःखों का अन्त भगवान का अभिग्रह चंदनवाला के हाथों पूरा हुआ देखकर

देवता चंदना पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने देव-दुंदुभी के साथ चंदना के घर (धनावह सेठ के घर) साढ़े बारह करोड़ सौनैयों की वृष्टि की और चंदना के सिर पर बाल बनाये, उसको सुन्दर वस्त्र पहनाए तथा पैरों की हथकड़ी-बेड़ी तोड़कर, उसे मूल्यवान आभूषण पहनाए। देव-दुंदुभी बजी हुई सुनकर और चंदना के हाथों से अभिग्रह फला जानकर महाराजा, महारानी सहित सहस्त्रों, पुरजन भी वहाँ आ पहुँचे। सभी ने चंदना की बहुत प्रशंसा की।

जब महारानी को जानकारी हुई कि- यह मेरी बहन की लड़की वसुमति है तथा राजा ने जाना कि मेरी साली की लड़की है, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ कि इसकी ऐसी दशा मेरे कारण हुई। उन्होंने इसके लिए उससे बार-बार क्षमा याचना की और बहुत आग्रह करके उसे राज प्रासाद में ले गए। फिर शतानिक ने दधिवाहन की खोज कराई और उनका राज्य उन्हें पुनः लौटा दिया।

चंदना का संसार त्याग- चंदना को अब वैराग्य हो चुका था, वह इसी प्रतीक्षा में संसार में रह रही थी कि जब भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होगा, तब मैं उनके समक्ष दीक्षा ले लूंगी।

उसके एक वर्ष बाद जब भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तब उसने राज्य सुख को छोड़कर कई स्त्रियों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह भगवान की सबसे बड़ी शिष्या हुई और उनकी शिष्याओं की उत्कृष्ट संख्या 36 हजार तक पहुँची।

अनुशासन- महासती चन्दनबालाजी का अनुशासन बहुत अच्छा था। कौशाम्बी की ही बात है, उनके पास उनकी मौसी मृगावतीजी भी दीक्षित हो गई थी। एक दिन वे कुछ महासतियों के साथ भगवान महावीर स्वामी के दर्शन के लिए 'चन्द्रावतरण' नामक उद्यान में गई, वहाँ पर सूर्यास्त तक चन्द्र और सूर्य देव मूल शरीर से उपस्थित थे। उनके प्रकाश से मृगावतीजी को सूर्यास्त की जानकारी न रह सकी। जब वे देव चले गए तो मृगावतीजी अन्य साध्वियों के साथ उपाश्रय (संत-सतियां जहाँ ठहरे हों) पहुँची। वहाँ पहुँचते-पहुँचते अंधेरा हो चुका था।

चंदनबालाजी ने प्रवर्तिनी होने के कारण उपालम्भ देते हुए कहा- ''आप जैसी उत्तम कुल शील वाली महासती को उपाश्रय से बाहर इतने समय तक ठहरना शोभा नहीं देता।''

विनय- मृगावतीजी ने अपने इस अपराध के लिए पैरों में पड़कर क्षमायाचना की। उसके बाद महासती चंदनबालाजी को शय्या पर सोते हुए नींद आ गई, पर महासती मृगावतीजी को उनके समीप ही अपने अपराध पर बहुत पश्चाताप करते-करते केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

उस समय सोती हुई चंदनबालाजी का हाथ संस्तारक (बिछाये हुए बिस्तर) से बाहर हो गया था। उधर एक सर्प आ निकला। मृगावतीजी ने हाथ को संस्तारक में कर दिया, इससे चंदनबालाजी की नींद खुल गई। उन्होंने पूछा-महासतीजी आप अभी तक सोई नहीं? आपने

मेरा हाथ क्यों हटाया ? मृगावतीजी ने कहा- 'हाथ को सर्प से बचाने के लिए।'

चंदनबालाजी- क्या आपको कोई ज्ञान पैदा हुआ है जो आपको अंधेरे में सर्प दिख गया?

मृगावतीजी- आपकी कृपा।

चंदनबालाजी- प्रतिपाती (नाश होने वाला) अथवा अप्रतिपाती (अमर)?

मृगावती- अप्रतिपाती।

चंदनबालाजी को यह सुनते ही बहुत पश्चाताप हुआ, वे सोचने लगी कि मुझसे केवलज्ञानी की आशातना हुई। इसी प्रकार पश्चाताप करते-करते चंदनबालाजी को भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। इस प्रकार चंदनबालाजी में दूसरों पर अनुशासन के साथ ही स्वयं के जीवन में भी महान विनय था।

मोक्ष- चंदनबालाजी अंत समय में सभी कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारीं।

(2) परम निष्ठावान कामदेव श्रावक

परिचय- अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी में जितशत्रु राजा राज्य करते थे। वहाँ कामदेव नामक प्रतिष्ठित सर्वमान्य सेठ रहते थे। उनकी 'भद्रा' नामक सुरूपा भार्या (पत्नी) थी। उनके कई छोटे-बड़े सुयोग्य पुत्र भी थे। पत्नी और पुत्र सभी कामदेव के अनुकूल थे। कामदेव के पास 18 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का धन था। उनमें से छः करोड़ कोष में, 6 करोड़ वृद्धि (ब्याज व्यापार) में तथा 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं घर विस्तार में लगी थी। कामदेव के छह गोकुल थे। प्रति गोकुल में 10,000 (दस हजार) पशु थे।

इस प्रकार कामदेव गृहस्थ परिवार, सम्पत्ति, सुख, प्रतिष्ठा, मान्यता आदि सब से सम्पन्न थे।

धर्म-ग्रहण- एक बार भगवान महावीर स्वामी उस नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य (व्यन्तरायत) में पधारे। ये समाचार पाकर कामदेव भगवान के दर्शन करने तथा वाणी सुनने गये। भगवान की वाणी सुनकर उनकी जैन धर्म पर श्रद्धा हुई। उन्हें लगा कि परिवार, धन, प्रतिष्ठा आदि की यह मेरी सारी सम्पन्नता वास्तव में सुखदायी नहीं है, न यह परभव में साथ चलेगी। विश्व में प्राणी के लिए केवल एक धर्म ही सच्चा सुखदायी है और भव-भव का साथी है इसलिए मुझे संसार त्याग करके दीक्षा ग्रहण करना उचित है परन्तु अभी मुझमें उतना सामर्थ्य नहीं है, अतः दीक्षा नहीं तो मुझे श्रावक व्रत तो ग्रहण करना ही चाहिए। यह सोचकर उन्होंने भगवान से सम्यक्त्व और श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये। पीछे नवतत्व की जानकारी आदि करके 21 गुण सम्पन्न श्रेष्ठ श्रावक बन गये। यहाँ तक कि भगवान के श्रावकों में वे नामांकित मुख्य श्रावकों में गिने जाने लगे।

कामदेव परमनिष्ठावान श्रावक थे। अपार समृद्धि के बीच वह तप और त्याग प्रधान जीवन ही जीते थे। 14 वर्ष तक उन्होंने ''गृहस्थ व्यवहार चलाते हुए श्रावकत्व का पालन किया, फिर उन्हें लगा कि गृहस्थी के झंझटों से धर्म-चिंतन, धर्म-करणी में बहुत बाधा पड़ती

है।'' तब उन्होंने गृहस्थी का सारा भार अपने बड़े पुत्र पर डालकर निवृत्ति ले ली। वे पौषध शाला में ही जाकर रहने लगे तथा भगवान द्वारा कथित धर्म प्रज्ञप्ति के अनुसार जीवन बिताने लगे।

पिशाच का पहला उपसर्ग- एक बार की बात है, उन्होंने पौषध किया था। दिन तो बीत गया, परन्तु जब आधी रात का समय हुआ, पौषधशाला के बाहर एक 'मिथ्यादृष्टि देव' आया। उसने भयंकर पिशाच का रूप बनाया। टोपले सा सिर, बाहर निकली हुई लाल-लाल आँखें, सूपड़े से कान, भेड़-सा नाक, घोड़े की पूंछ-सी मूंछे, ऊंट के जैसे लम्बे होंठ, फावड़े के जैसे दांत, लपलताती जीभ इस प्रकार पिशाच का रूप बहुत ही विकृत था। ताड़-सा लम्बा, कपाट-सा चौड़ा, काँख में सर्प लपेटे, वह पिशाच हाथ में चमचमाता नीला खड्ग (तलवार) लेकर भयानक शब्द करता हुआ पौषधशाला में कामदेव के पास आया और बोला- अरे! कामदेव! मृत्यु के चाहने वाले कुलक्षण! अशुभ दिन के जन्मे! लज्जादि से रहित! धर्म मोक्ष को चाहने वाले! तुझे पौषध आदि व्रत से डिगना उचित नहीं लगता परन्तु आज यदि तू धर्म से नहीं डिगता है, उसे नहीं छोड़ता है तो मैं आज इस खड्ग से तेरे खण्ड-खण्ड कर दूँगा, जिससे तू अकाल में ही दुःख पाता हुआ मर जाएगा।

पिशाच-रूपी देव के ऐसा कहने पर कामदेव भयभीत नहीं हुए, क्षुब्ध नहीं हुए, भागे भी नहीं परन्तु उपसर्ग समझ कर सागारी संथारा (अनशन) ग्रहण कर लिया और समभाव पूर्वक धर्म ध्यान करते रहे। ऐसा देखकर उस देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही, परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अंतर नहीं आया। तब देव ने क्रुद्ध होकर, भौंहें चढ़ा कर खड्ग से कामदेव के खण्ड-खण्ड करने जैसा अनुभव करा दिया। उससे कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। ऐसी महावेदना को सहन करना बहुत कठिन था, फिर भी कामदेव बहुत ही शान्ति से उस महावेदना को सहन करते रहे।

हाथी का दूसरा उपसर्ग- यह देखकर उस देव को निराशा हुई। वह पौषधशाला से बाहर निकला। फिर दूसरी बार में उसने अपना पर्वत-सा लम्बा-चौड़ा, तीखे तीखे दाँत वाला, लम्बी-सी सूंडवाला, मेघ-सा काला और मदमाते भयंकर हाथी जैसा रूप बनाया तथा पौषधशाला में आकर कहा- 'अरे! कामदेव! मृत्यु चाहने वाले! इत्यादि! यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतों को नहीं छोड़ता तो अभी तुझे सूंड से पकड़कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊंगा। वहां तुझे आकाश में उछाल कर फिर तीखे दाँतों पर झेलूंगा। फिर भूमि पर डाल कर पैरों तले तीन बार रौंदूंगा, जिससे तू अकाल में ही दुःख पाता हुआ मर जाएगा।'

कामदेव, हाथी के इन वचनों को सुनकर भी न डरे, वरन पहले के समान ही निर्भय, धर्म ध्यान करते रहे। यह देख उस हाथी रूप-धारी देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अंतर नहीं आया। तब देव ने क्रुद्ध होकर कामदेव को सूंड से पकड़ कर पौषधशाला से बाहर निकाला, आकाश में उछाला, तीखे तीखे दाँतों पर झेला और भूमि पर डाल कर तीन बार पैरों से बहुत रौंदा, इस प्रकार का

अनुभव करा दिया। उससे कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शांति से ही सहन करते रहे।

सर्प का उपसर्ग- यह देखकर देव को बहुत निराशा हुई। उसका दूसरा उपसर्ग भी कामदेव को डिगा नहीं सका। तब वह पौषधशाला से बाहर निकला। तीसरी बार उसने मसी (स्याही) सा काला, चोटी-सा लम्बा, लपलपाती दो जीभ वाला, लोही-सी आँखों वाला, बहुत बड़े फणवाला, आँखों में भी विष वाला, महा-फूंकार करता, भयंकर सर्प का रूप बनाया और पौषधशाला में आकर कहा- 'अरे! कामदेव! मृत्यु चाहने वाले! इत्यादि। यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतों को नहीं छोड़ता तो मैं अभी सर-सर करता तेरी काया पर चढ़ जाऊँगा। पिछली ओर से फांसी के समान तीन बार तेरी ग्रीवा (गले) को लपेटूंगा। फिर विष वाली तीखी दाढ़ों से तेरे हृदय पर ही कई दंश दूंगा, जिससे तू अकाल में ही दुःख पाता हुआ मर जाएगा।'

कामदेव, सर्प के इन वचनों को सुनकर भी पहले के समान ही निर्भय और निश्चल धर्म-ध्यान में लीन रहे। यह देख उस सर्प रूप धारी देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अंतर नहीं आया। तब देव क्रुद्ध होकर सर सर करता कामदेव की काया पर चढ़ा। पिछली ओर से फाँसी के समान ग्रीवा को तीन बार लपेटा, फिर विष वाली दाढ़ों से हृदय पर दंश दिये। उससे भी कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शांति से ही सहन करते रहे।

यह देखकर देव पूरा निराश हो गया। वह पिशाच, हाथी और सर्प के तीन-तीन बड़े उपसर्ग करके भी कामदेव को धर्म और व्रत से डिगा नहीं सका। तब वह पौषधशाला से बाहर निकला। इस बार उस देव ने अपना वास्तविक रूप देव का ही रूप बनाया। चमकता सुनहरा शरीर, उज्ज्वल बहुमूल्य वस्त्र, भांति-भांति के उत्कृष्ट कोटि के हार आदि आभूषणयुक्त तथा दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला दिव्य वह देव-रूप- फिर उसने पौषधशाला में आकर कहा-

प्राण जाय पर प्रण नहीं जाय।
देह जाय पर धर्म नहीं जाय।।

देव प्रशंसा- हे कामदेव ! श्रमणोपासक ! (साधु की उपासना करने वाले!) तुम धन्य हो। तुम बड़े पुण्यवान हो, तुम कृतार्थ हो, तुम सुलक्षण हो, तुम्हारा जन्म और जीवन सफल है, क्योंकि निग्रन्थ प्रवचन (जैन धर्म) में ऐसी दृढ श्रद्धा है कि देवता भी तुम्हें डिगा नहीं सकते।

'हे देवानुप्रिय! (यह आर्य सम्बोधन है) पहले देवलोक के इन्द्र ने अपनी सभा के बीच तुम्हारी प्रशंसा करते हुए कहा था कि कामदेव श्रमणोपासक निर्ग्रन्थ प्रवचन में इतने दृढ़ है कि उन्हें देव-दानव कोई भी धर्म से डिगा नहीं सकता। धर्म-दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए मैं यहाँ आया था। तीन बड़े-बड़े उपसर्ग देकर अब मैंने आज प्रत्यक्ष ही देख लिया है कि आपकी निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन धर्म) में अचल श्रद्धा है। हे देवानुप्रिय! मैंने जो आपको उपसर्ग दिये, उसके लिए मैं आपसे बार-बार क्षमा चाहता हूँ। आप मुझे क्षमा करें। आप क्षमा करने योग्य हैं।

अब मैं पुनः इस प्रकार कभी आपको उपसर्ग नहीं दूंगा।'

इस प्रकार उस देव ने कामदेव की प्रशंसा की और उन्हें इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा सुनाई। उनको अपने यहाँ आने का और उपसर्ग देने का कारण बताया तथा उनको उपसर्ग में भी धर्मदृढ रहने वाला बता कर उनके पैरों में पड़ कर उसने बार-बार क्षमा याचना की। फिर वह देवता जहाँ से आया था, उधर चला गया।

समवसरण में- कामदेव ने अपने को निरुपसर्ग (उपसर्ग रहित) जान कर अपना सागारी - संधारा पार लिया। दिन उगने पर उन्होंने अपनी नगरी में भगवान को पधारे हुए जाना इसलिए पौषध पारने के पहले ही भगवान के दर्शन करने तथा वाणी सुनने के लिए गये।

भगवान ने सबको पहले धर्म-कथा सुनाई। फिर धर्म-कथा समाप्त होने पर सबके सामने कामदेव से कहा-क्यों कामदेव ! क्या पिछली रात को तुम्हें देवता के द्वारा पिशाच, हाथी और सर्प-रूप में तीन-तीन बार भयंकर उपसर्ग हुए? इत्यादि देवता के आने से लेकर चले जाने तक का बीता वृत्तान्त सुनाकर भगवान ने कहा- 'कामदेव! क्या यह सच है?' कामदेव ने कहा- 'हाँ सच है।'

साधु-साध्वियों को शिक्षा- कामदेव के द्वारा हाँ भरने पर भगवान ने बहुत से साधु-साध्वियों को संबोधित करके कहा- ''आर्यों! जब गृहस्थावास में रहने वाला श्रमणोपासक श्रावक भी देव, मनुष्य और तिर्यच संबंधी उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन कर धर्म ध्यान में दृढ़ रहता है तो निर्ग्रन्थ मुनियों को तो और भी अधिक परिषह सहन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। इसी में मुनि-धर्म की शोभा है।'' भगवान के इन वचनों को सभी श्रमण निग्रन्थ ने विनयपूर्वक जीवन में उतारने का संकल्प किया।

देवलोक गमन तथा मोक्ष- उसके पश्चात् कामदेव श्रावक ने भगवान से कुछ प्रश्न किये और उत्तर प्राप्त कर अपनी शंकाएं दूर की तथा जिज्ञासाएं पूर्ण की। पश्चात् बन्दन-नमस्कार करके अपने घर को लौट गये।

कामदेव श्रावक ने उसके पश्चात् और भी अधिक धर्म-ध्यान किया। श्रावक की 11 प्रतिमाओं का आराधन कर 20 वर्ष तक श्रावकत्व का पालन किया। अन्त में उन्होंने अपने जीवन में जो कोई दोष लगा, उसकी आलोचना प्रतिक्रमण करके संथारा ग्रहण किया। एक मास का अनशन होने पर वे मृत्यु के अवसर पर काल करके पहले देवलोक में देव-रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से वे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सम्यकुदर्शन, ज्ञान, चारित्र की पूर्ण आराधना कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होंगे। धन्य है कामदेव श्रावक की धर्मदृढ़ता!

(3) सेवामूर्ति मुनि नन्दीषेण

मगध देश के नन्दी ग्राम में एक गरीब ब्राह्मण था, उसके सोमिला नाम की पत्नी से नन्दीसेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह महा मन्दभागी था। बचपन में ही माता-पिता के मर

जाने से अनाथ हो गया। उदर विकार से उसका पेट बढ़ गया तथा वह पूर्ण रूप से कुरूप था। स्वजनों ने उसका त्याग कर दिया था। किन्तु उसके मामा ने उसे अपने पास रख लिया था। उसके मामा की सात पुत्रियाँ थीं। युवावस्था प्राप्त होने पर मामा ने कहा- 'मैं तुझे एक पुत्री दूंगा।' कन्या पाने के लोभ से वह मामा के घर के सभी काम करने लगा। पुत्रियों ने अपने पिता का वचन सुना तो सभी पुत्रियां नन्दीसेन के प्रति घृणा करने लगी। नन्दीसेन चिन्तामग्न हो गया। उसके मामा ने विश्वास दिलाया कि किसी और कन्या के साथ तेरा विवाह करा दूंगा। मगर नन्दीसेन को विश्वास नहीं हुआ। वह सोचने लगा ऐसी दूसरी कन्या कौन होगी जो मेरे साथ लग्न करेगी? इस प्रकार विचार कर वह संसार से उदासीन हो गया और उसकी विरक्ति बढ़ी। वह मामा का घर छोड़कर रत्नपुर नगर आया। उसकी दृष्टि एक युगल स्त्री-पुरुष पर पड़ी जो काम-क्रीड़ा में आसक्त थे। नन्दीसेन अपने दुर्भाग्य को कोसता हुआ मृत्यु की इच्छा से एकान्त में जाकर अपने गले में फाँसी लगाने को तैयार हुआ। उसी समय एक संत मुनिराज वहाँ आ पहुँचे और बोले- अरे भाई! तू ऐसा क्यों करता है? लड़का बोला- मरने का उपाय कर रहा हूँ। मुनिराज- क्यों, ऐसा कौन-सा संकट आ पड़ा है? जिससे यह घोर कर्म करने को तैयार हुआ है? लड़का बोला- मैं बहुत दुःखी हूँ। बचपन में ही मुझे अकेला छोड़कर मेरे माँ-बाप चल बसे। मेरे मामा मुझे अपने घर ले गए मगर मामी मुझसे द्वेष करने लगी। फिर मैं ठहरा कुरूप, जिससे सभी मेरा तिरस्कार करते हैं। इसलिए अब मेरे लिए मर जाना ही अच्छा है।

मुनिराज ने उसे समझाया- यह सब तेरे पूर्व भव के पाप का फल है. अपने किये कर्मों का फल तुझे भोगना ही पड़ेगा। आत्महत्या करने से तू फल भोगने से बच नहीं सकता। अगर तू आत्महत्या कर लेगा, तो आगे इससे भी भयंकर दुःख तुझे सहन करने पड़ेंगे। हाँ, किए कर्मों का फल शान्ति के साथ भोगेगा, तो तेरे पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाएँगे। जिससे तू भविष्य में सुखी होगा।

मुनि के वचन सुनकर लड़का समझ गया। वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा और बोला- मुझे सन्मार्ग बताइए। मुनि ने धर्मोपदेश दिया जिससे दीक्षित होकर वह लड़का नदीषेण नामक साधु बन गया। उन्होंने सेवा करना ही अपना मुख्य ध्येय बनाया। वे रोगी, तपस्वी आदि साधुओं की सच्चे मन से सेवा करने लगे। छोटे बड़े सभी उनकी सेवा भक्ति से प्रसन्न हो जाते थे।

नन्दीषेण मुनि की कीर्ति इतनी फैली कि इन्द्र ने भी अपनी सभा में उनकी तारीफ की। दो मिथ्यावादी देवों ने सोचा ऐसा सेवाभावी नन्दीषेण कौन है? चलो, उसकी परीक्षा की जाए। दोनों देव परीक्षा करने चले। एक बना बूढ़ा-रोगी साधु और दूसरा बना साधारण साधु।

एक दिन नन्दीषेण मुनि बेले का पारणा कर रहे थे। उसी समय साधारण साधु वहाँ आ पहुँचा। उसने कहा- तुझे लोग सेवाभावी कहते हैं और तू यहाँ बैठा-बैठा माल उड़ा रहा है। अरे नन्दीषेण ! इसी गाँव के बाहर एक अपंग बूढ़े साधुजी बैठे हैं। उन्होंने कितने ही दिनों से कुछ भी नहीं खाया-पिया है। तू सेवाभावी गिना जाता है, जा उनकी सेवा कर।

यह सुनकर नन्दीषेण ने एक भी कौर मुँह में नहीं डाला। भोजन का पात्र एक किनारे रख दिया और खड़े हो गए। आठ-दस घरों में घूमकर अचित्त पानी लिया और गाँव के बाहर पहुँचे। साधु को देखकर वन्दन किया। पानी उनके सामने रख दिया। बूढ़ा साधु उछल पड़ा। कहने लगा हाय! मैं कब से दु:खी हो रहा हूँ। कब का संदेश भेजा है, तू अब आया है।

नन्दीषेण ने कहा- क्षमा कीजिए महाराज। निर्दोष पानी लाने के लिए घूमना पड़ा। इसी से देर हो गई। चलो, आपको गाँव में ले चलूँ।

बीमार बना साधु फिर बनावटी क्रोध से बोला- मूर्ख कहीं के। मैं हिल तो सकता नहीं और तू चलने की बात करता है। यह कहते तुझे शर्म नहीं आती।

नन्दीषेण ने कहा- 'प्रभो ! मैं आपको अपने कंधे पर बिठाकर ले चलूँगा।' इतना कहकर उन्होंने सहारा देकर उठाया और अपने कंधे पर बिठा लिया और पानी के पात्र की झोली उठाकर चलने लगे। वह बनावटी मुनि भारी-भारी होने लगा। बेले-बले उपवास के कारण नन्दीषेण मुनि का शरीर अशक्त हो गया था। मगर उस देव को तो मुनि की परीक्षा करनी थी। साथ वाले दूसरे मुनि ने कहा- ''अरे! जवान होकर इस तरह काँपता हुआ चल रहा है, इससे वृद्ध संत को कितना कष्ट हो रहा है?''

कंधे पर बैठे मुनि ने कहा- ''अरे नन्दीषेण इतना तेज चल रहा है कि मेरा शरीर सहन नहीं कर सकता।'' जब वे धीरे-धीरे चलने लगे और कहा- ''अच्छा महाराज ! अब अच्छी तरह से चलता हूँ।'' और इस प्रकार सावधानी से चलने लगे, जिससे पात्र से पानी नहीं छलके और मुनिराज को पीड़ा न हो।

अब भी कसर रह गई थी। ऊपर बैठे मुनि को शौच की शंका हुई। नन्दीषेण उसे नीचे उतारें- तब तक तो उसने अशुचि कर दी। नन्दीषेण के कपड़े लथ-पथ हो गए। उनका शरीर भी मल-मूत्र से भर गया। चारों ओर बदबू फैल गई। लेकिन नन्दीषेण मुनि एक ही बात सोच रहे थे- अहो! इन वृद्ध मुनि को कितना कष्ट हो रहा होगा? जल्दी उपाश्रय में ले जाकर इनकी सेवा कर ऐसी सार-संभाल करूँ कि ये अच्छे हो जाएँ।

''धन्य है सेवाभावी नन्दीषेण।''

इतने में स्थानक आ गया। नन्दीषेण मुनि ने पात्रे की झोली एक तरफ रखकर मुनि को धीरे से नीचे उतारा। मल-मूत्र साफ करने के लिए ज्यों ही उन्होंने पीछे फिर कर देखा, तो न वहाँ साधु और न वहाँ मल-मूत्र! सभी कुछ गायब हो गया।

नन्दीषेण मुनि को दो दिव्य ज्योतियाँ दिखाई दीं। दिव्य वाणी भी उन्हें सुनाई दी- ''धन्य हो, मुनिवर! आपकी सेवा अद्‌भुत है। आप सचमुच वैसे ही हैं जैसा कि हमने इन्द्र महाराज से सुना था। हम आपकी परीक्षा लेने आए थे और हमें संतोष हुआ है। हमारे द्वारा कृत अपराध के लिए हमें क्षमा करें। आप कुछ माँग लीजिए।''

नन्दीषेण मुनि ने कहा- ''वीतराग धर्म से बढ़कर और क्या है, जो माँगू? मुझे और कुछ नहीं

माँगना है। मैने अपने धर्म का पालन किया है, किसी पर उपकार नहीं किया है।''

दोनों देव वन्दन-नमस्कार कर खुशी-खुशी चले गए। कहाँ आत्महत्या करने को तैयार हुआ लड़का और कहाँ सेवामूर्ति नन्दीषेण मुनि। धर्म के प्रताप से कितना बड़ा परिवर्तन हो गया।

सेवा धर्म गहन बड़ा, अनुभव का यह बेण।
सेवा से सिद्धि मिले, देखो नन्दीषेण ।।

卐

काव्य विभाग

(1) बारह भावना (भुधरदासजी कृत)

1. अनित्य भावना (भरत चक्रवर्ती)

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार।।

2. अशरण भावना (अनाथी मुनि)

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरति विरिया जीव को, कोई न राखन हार।

3. संसार भावना (धन्ना शालिभद्र जी)

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान ।
कहुँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।

4. एकत्व भावना (नमि राजर्षि)

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
या कबहु इस जीव को, साथी सगा न कोय।।

5. अन्यत्व भावना (मृगापुत्र जी)

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपत्ति प्रकट ये, पर है परिजन लोय।।

6. अशुचि भावना (सनत्कुमार चक्रवर्ती)

दिपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।।

7. आश्रव भावना (राजा समुद्रपाल)

जगवासी घूमे सदा, मोह नींद के जोर।
सब लूटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुँ ओर ।।

8. संवर भावना (केशी गौतम स्वामी जी)

मोह नींद जब उपशमें, सद्गुरु देय जगाय।।
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय ।

9. निर्जरा भावना (अर्जुनमाली)

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर ।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।

10. लोक भावना (शिव राजर्षि)

चौदह राजू उत्तंग नभ, लोक-पुरुष-संठान।
तामे जीव अनादि से, भरमत है बिन ज्ञान।।

11. बोधि दुर्लभ भावना (भ. ऋषभदेव के 98 पुत्र)

धन-जन-कंचन राज सुख, सबहिं सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान।।

12. धर्म भावना (धर्मरुचि अणगार)

याचे सुरतरु देय सुख, चिन्तित चिन्ता रैन।
बिन याचे बिन चिन्तिये, धर्म सकल सुख दैन।।

(2) साता कीजो जी

साता कीजोजी श्री शान्तिनाथ प्रभु।
शिव सुख दीजोजी, साता कीजोजी ।। टेर ।।

शान्तिनाथ है नाम आपका, सबने साताकारीजी।
तीन भुवन में चावां प्रभुजी, मृगी निवारीजी ।।1।। कि साता...

आप सरीखा देव जगत में, और नजर नहीं आवेजी।
त्यागी ने वीतरागी मोटा, मुझ मन भावेजी ।।2।। कि साता...

शान्ति जाप मन माँहीं जपता, चाहे सो फल पावेजी।
ताव तेजरो दुःख दारिद्र भय मिट जावेजी ।।3।। कि साता..

विश्वसेन राजाजी के नन्दन, अचला देवी जायाजी।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, घणा सुहाया जी ।।4।। कि साता..

(3) आत्म जागरण

उठ भोर भई टुक जाग सही, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु।
अब नींद अविद्या त्याग सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।।1।।

जग जाग उठा तू सोता है, अनमोल समय यह खोता है।
तू काहे प्रमादी होता है, भज वीरप्रभु, भज वीरप्रभु ।।2।।

यह समय नहीं है सोने का, है वक्त पापमल धोने का।
अरू सावधान चित्त होने का, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु ।।3।।

तू कौन कहाँ से आया है, अब गमन कहाँ मन भाया है?
टुक सोच ये अवसर पाया है, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु ।।4।।

रे चेतन चतुर हिसाब लगा, क्या खाया खरचा लाभ हुआ।
निज ज्ञान जगा तू सम्भाल हिया, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु ।।5।।

गति चार चौरासी लाख रुला, ये कठिन कठिन शिवराह मिला।
अब भूल कुमार्ग विषय मत जा, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु ।।6।।

卐

सामान्य ज्ञान विभाग

(1) चार बातें

चार गति के कारण-

1. नरक गति के चार कारण-

1. **महाआरंभ-** पन्द्रह कर्मादान का आसक्ति पूर्वक सेवन करना।
2. **महापरिग्रह- महातृष्णा और महाममत्व रखना।**
3. **मांसाहार-** मद्य, मांस अण्डे आदि का आहार करना।
4. **पंचेन्द्रिय वध-** शिकार करना, कसाई का काम करना, मछली अण्डे का व्यापार करना।

2. तिर्यंच गति के चार कारण-

1. **माया-** माया करना (कपट करना), माया की बुद्धि रखना।
2. **निकृति-** गूढ़ माया करना अर्थात् झूठ सहित माया करना या एक कपट को छिपाने के लिए दूसरा कपट करना।
3. **अलीक वचन-** कन्या, भूमि, पशु आदि के विषय में झूठ बोलना।
4. **कूट तोल कूट माप-** देते समय कम तोलना, कम मापना, लेने समय अधिक तोलना, अधिक मापना, वस्तु में भेल सम्भेल करना।

3. मनुष्य गति के चार कारण-

1. **प्रकृति की भद्रता-** प्राकृतिक (स्वाभाविक, बनावटी नहीं) भद्रता (सरलता) रखना।
2. **प्रकृति की विनीतता-** स्वभाव से ही नम्रता, विनयशीलता रखना।
3. **सानुक्रोशता-** अनुकम्पा (दया) भाव रखना।
4. **अमत्सरता-** मत्सरता (ईर्ष्या बुद्धि) का भाव न रखना।

4. देव गति के चार कारण-

1. **सराग संयम-** प्रशस्त राग सहित साधुत्व पालना।
2. **संयामासंयम-** श्रावकत्व का पालना।
3. **बाल तप-** आत्म शुद्धि के अलावा अन्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु तप करना।
4. **अकाम निर्जरा-** अभाव, पराधीनता आदि कारण से अनिच्छापूर्वक परीषह और उपसर्ग सहन करना।

5. मोक्ष के चार कारण-

1. सम्यग् ज्ञान 2. सम्यक् दर्शन 3. सम्यग् चरित्र 4. सम्यक् तप।

6. संसार घटाने के चार उपाय-

1. दान 2. शील 3. तप 4. भावना।

7. चार हमेशा छोड़ने योग्य-

1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ।

8. चार हमेशा नहीं करने योग्य-

1. क्लेश हो वैसा बोलना नहीं। 2. कर्ज हो वैस खर्च करना नहीं।
3. रोग हो वैसा खाना नहीं। 4. पाप हो वैसे काम करना नहीं।

9. महान बनने के चार कारण-

1. वाणी में मधुरता। 2. दृष्टि में प्रसन्नता।
3. मन में पवित्रता। 4. व्यवहार में कुशलता।

(2) सात कुव्यसन

किसी भी विषय में तल्लीन होने को अर्थात् आदत को व्यसन कहते हैं और बुरे विषयों में लीन होना कुव्यसन है। इससे जीव आकुल-व्याकुल हो जाता है और दुराचरण करता है। वे सात हैं -

1. जुआ- रुपये, पैसे या किसी प्रकार के धन वस्तु आदि से हार जीत का खेल खेलना, शर्त या दाँव लगाना, सट्टा करना, आंकड़े लगाना आदि जुआ है। जीवन में भूलकर भी

कभी जुआ नहीं खेलना चाहिए। इससे धन का नाश होता है एवम् दुनिया में बदनामी होती है।

2. चोरी- दूसरों के बिना दी हुई वस्तु लेना चोरी है। चोरी करने से जेल में जाना पड़ता है और यातनाएं सहन करनी पड़ सकती है। धन और कीर्ति से तो हाथ धोना ही पड़ता है एवं सदा के लिए अविश्वास का पात्र बनता है।

3. शिकार- किसी भी पशु-पक्षी को निर्दयी होकर किसी भी शस्त्र से मारकर आनन्दित होना, मन में हिंसक प्रवृत्ति का पैदा होना शिकार है। शिकार नहीं करना चाहिए। इससे निर्दोष प्राणियों की जान तो जाती ही है, शिकार करने वालों को भी दुर्गति में जाना पड़ता है। इससे धर्म का नाश होता है।

4. मद्यपान- शराब, गांजा, भांग आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करना मद्यपान है। पदार्थों को सड़ा-गला कर इसे तैयार किया जाता है। इसके निर्माण में अनेक त्रस जीवों की हिंसा होती है। स्वास्थ्य, सम्पत्ति, शक्ति एवं शान्ति का नाश शराब आदि नशीली वस्तुओं से होता है। इससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। बीड़ी-सिगरेट आदि पीने से कैंसर जैसी भयंकर बीमारी हो जाती है।

5. मांस खाना- अण्डे, पंचेन्द्रिय जीव के कलेवर खाने वाले को मांस खाना कहते हैं। इससे दया-भाव नष्ट हो जाता है और मन में क्रूरता आती है। अंडा भी पूर्ण रूप से मांसाहार है।

6. वेश्यागमन- वेश्या के साथ गमन करना वेश्यागमन है। इससे तन और धन दोनों का विनाश होता है, दुनिया में अपयश फैलता है।

7. परस्त्रीरमण- अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ रमण परस्त्रीरमण हैं। इसके सेवन से जीवन बर्बाद हो जाता है। पर स्त्री में आसक्त मनुष्य अपना सब कुछ गंवा बैठता है, मर कर भी वह दुर्गति में जाता है।

अज्ञानतावश या कुसंगति से मनुष्य को कुछ ऐसे कुव्यसन लग जाते हैं कि उन्हें छोड़ना कठिन हो जाता है। ऐसे कुव्यसनों से क्या लाभ जो मानव को परतन्त्र बनाकर पतनगामी बना देते हैं। इन सप्त कुव्यसनों को त्यागे बिना आत्मा की पहचान नहीं हो सकती। इनके त्याग से व्यक्ति इस लोक में सुखी रहता है और परलोक में भी दुर्गति से बच जाता है।

(3) रात्रि भोजन

जीवन के लिए भोजन आवश्यक है। बिना भोजन किए मनुष्य का दुर्बल जीवन टिक नहीं सकता। परन्तु भोजन करने की भी एक सीमा है। जीवन के लिए भोजन है, न कि भोजन के लिए जीवन! आज के युग में भोजन के लिए जीवन बन गया है। खाने-पीने के संबंध में प्राचीन नियम प्रायः सब भुला दिये गये हैं। जो कुछ भी अच्छा बुरा सामने आता है, मनुष्य झटपट चट करना चाहता है। न मांस से घृणा है न मद्य से परहेज, न भक्ष्य का पता है न अभक्ष्य का, धर्म

की बात तो दूर आज भोजन के फेर में अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं रखा जा रहा है।

आज का मनुष्य प्रातः बिस्तर से उठते ही खाने लगता है और दिन-भर पशुओं की तरह चरता रहता है। घर पर खाता है, मित्रों के यहाँ खाता है, बाजार में खाता है और तो और, दिन छिपते खाता है, रात में खाता है और बिस्तर पर सोते सोते भी दूध का गिलास पेट में उड़ेल लेता है। पेट है या कुछ और। दिन-रात इस गड्ढे की भरती होती रहती है फिर भी संतोष नहीं।

भारत के प्राचीन शास्त्रकारों ने भोजन के संबंध में बड़े ही सुन्दर नियमों का विधान किया है। भोजन में शुद्धता, पवित्रता, स्वच्छता और स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए, स्वाद का नहीं। मांस और शराब आदि अभक्ष्य पदार्थों से सर्वथा दूर रहना चाहिए और शुद्ध भोजन भी भूख लगने पर ही करना चाहिए। भूख के बिना भोजन का एक कौर भी पेट में डालना, अहितकर है। भूख लगने पर भी दिन में दो-तीन बार से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और रात में भोजन करना तो कदापि उचित नहीं है।

जैन धर्म- जैन धर्म में रात्रि भोजन के निषेध पर बहुत बल दिया गया है। प्राचीनकाल में तो रात्रि भोजन न करना, जैनत्व की पहचान के लिए एक विशिष्ट लक्षण था। वह जैन कैसा, जो रात्रि में भोजन करे? रात्रि भोजन करने में जैन धर्म में हिंसा का दोष बतलाया है।

बहुत से इस प्रकार के छोटे-छोटे सूक्ष्म जीव होते हैं, जो दिन में सूर्य के प्रकाश में तो दृष्टि में आ सकते हैं, परन्तु रात्रि में तो वे कदापि दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। रात्रि में मनुष्य की आँखे निस्तेज हो जाती है। अतएव वे सूक्ष्म जीव भोजन में गिरकर बड़ा ही अनर्थ करते हैं। जीवों की अज्ञानता से हिंसा होती है और अपना नियम भंग होता है।

आज के युग में मनचले लोग तर्क किया करते हैं 'रात्रि में भोजन करने का निषेध सूक्ष्म जीवों को न देख सकने के कारण ही किया जाता है न'? अगर हम बत्ती (Light) जला लें और प्रकाश कर लें, फिर तो कोई हानि नहीं ? उत्तर में कहना होगा कि दीपक आदि के द्वारा हिंसा से बचा नहीं जा सकता। दीपक, बिजली और चन्द्रमा आदि का प्रकाश चाहे कितने ही क्यों न हो; परन्तु वह सूर्य के प्रकाश जैसा सार्वत्रिक, अखण्ड, उज्वल और आरोग्य-प्रद नहीं है। जीव रक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से सूर्य का प्रकाश ही सबसे अधिक उपयोगी है और कभी-कभी तो यह देखा गया है कि दीपक आदि के प्रकाश होने पर आस-पास के जीव जन्तु और अधिक सिमट कर पास आ जाते हैं, फलतः भोजन करते समय उनसे बचना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है।

विज्ञान- रात्रि में किया गया भोजन स्वास्थ्य के लिए भी अहितकारी है, हानिप्रद है। **विज्ञान** ने गहरे अनुसंधान के पश्चात् यह प्रतिपादित किया है कि मानव का तेजस केन्द्र जो भोजन को पचाने का कार्य करता है, सूर्यास्त के पूर्व सूर्य की गर्मी के कारण सक्रिय रहता है और सूर्यास्त के बाद तेजस केन्द्र थोड़ा सिकुड़ जाता है, निष्क्रिय हो जाता है। ऐसी स्थिति में जो कुछ खाया जाता है, वह पूरा पचता नहीं है और न पचने की स्थिति में हमारा तन व मन

अस्वस्थ हो जाता है।

आयुर्वेद- सिद्धान्त की मान्यतानुसार रात्रि विश्राम के तीन या चार घण्टे पूर्व भोजन हो जाना चाहिए। रात्रि में किया गया भोजन आहार नली में ही पड़ा रहता है, पचता नहीं है, बल्कि सड़ता भी है और वैसा ही मल द्वारा निकल जाता है। इससे धीरे-धीरे पाचन क्रिया बिगड़ जाती है और बदहजमी का शिकार होना पड़ता है। इससे शरीर रोगी हो जाता है।

पद्म पुराण- में नरक के जो चार द्वार बताए गए हैं, उसमें रात्रि भोजन नरक का प्रथम द्वार बताया गया है। पुराणों में यहाँ तक कहा गया है कि सूर्यास्त होने के बाद भोजन करने वाले को अनजाने में अभक्ष्य खाने का पाप लगता है।

त्याग-धर्म का मूल संतोष में है। इस दृष्टि से भी दिन की अन्य सभी प्रवृत्तियों के साथ भोजन की प्रवृत्ति को भी समाप्त कर देना चाहिए तथा संतोष के साथ रात्रि में पेट को विश्राम देना चाहिए। ऐसा करने से भली-भांति निद्रा आती है, ब्रह्मचर्य पालन में भी सहायता मिलती है और सब प्रकार से आरोग्य की वृद्धि होती है। जैन धर्म का यह नियम, पूर्णतया आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टि को लिए हुए हैं। शरीर-शास्त्र के ज्ञाता लोग भी रात्रि भोजन को बल, बुद्धि और आयु का नाश करने वाला बतलाते हैं।

धर्म शास्त्र और वैद्यकशास्त्र की गहराई में न जाकर, यदि हम साधारण तौर पर होने वाली रात्रि भोजन की हानियों को देखें, तब भी वह सर्वथा अनुचित ठहरता है। भोजन में कीड़ी (चींटी) खाने में आ जाए तो बुद्धि का नाश होता है, जूं खाई जाए तो जलोदर नामक भयंकर रोग हो जाता है, मक्खी पेट में चली जाए तो वमन हो जाता है, छिपकली खा ली जाए तो कोढ़ हो जाता है, शाक आदि में मिलकर बिच्छु पेट में चला जाय तो तालू वेध डालता है, केश गले में चिपक जाए तो स्वर भंग हो जाता है; इत्यादि अनेक दोष रात्रि भोजन के प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं।

रात्रि का भोजन, अंधों का भोजन है। एक दो नहीं, हजारों दुर्घटनाएं देश में रात्रि भोजन के कारण होती है। सैकड़ों लोग अपने जीवन तक से हाथ धो बैठते हैं।

अतः रात्रि भोजन सब प्रकार से त्याज्य है। जैन धर्म में तो इसका बहुत ही प्रबल निषेध किया गया है। अन्य धर्मों में भी इसे आदर की दृष्टि से नहीं देखा गया है। महात्मा गाँधी भी रात्रि भोजन को अच्छा नहीं समझते थे। उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति रात्रि में भोजन करते हैं वे हिंसक हैं। लगभग 40 वर्ष से जीवन पर्यन्त रात्रि भोजन त्याग का व्रत गांधीजी ने बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया। यूरोप गये तब भी उन्होंने रात्रि भोजन नहीं किया।

आधुनिक सभ्यता के नाम पर हमें अपनी गौरवपूर्ण परम्पराओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। पशु-पक्षी भी रात्रि में नहीं खाते हैं तो क्या हम पशु-पक्षी से भी गए गुजरे हो गए हैं? हमें अपनी परम्परा का दृढ़ता पूर्वक निर्वाह करना चाहिए। हम जो भी खाएँ सात्विक, शाकाहार तथा सूर्यास्त पूर्व ही खाएं। प्रत्येक जैन का कर्तव्य है कि वह रात्रि भोजन का त्याग करे। न रात्रि में भोजन बनाए और न खाएं। इसमें शारीरिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक लाभ सुनिश्चित है।

कीड़ी, कमेड़ी, कागला, रात पड़्या नहीं खाय।
मिनख जमारो पाई ने, रात पड़े किम खाय?

(4) दोहे

अहिंसा

1. सभी चराचर जीवों को, मानों आत्म समान।
समदर्शी महावीर का, सदा यही फरमान।।
2. जीवों की रक्षा करे, रक्खे ठण्डी छाया।
ऊँचा कुल में उपजे, सीधी मिलसी माया ।।
3. अंग से बालक उपजे, अंग से उपजे जूं।
बालक की रक्षा करे, जूं ने मारे क्यूं ।।
4. सुख दिया सुख होत है, दुख दिया दुख होय।
आप हणे नहीं अवर को, तो आपको हणे न कोय।
5. सब आगमों के मन्थन में, बात मिली है दोय।
दुख दिया दुख होत है, सुख दिया सुख होय ।।

वाणी

1. कष्ट किसी को ना पहुँचे, तुझसे ओ प्राणी।
मुँह से तेरे जब निकले, तो बस अमृत वाणी ।।
2. जिह्वा में शक्ति बड़ी, बिगड़ी देय बनाय।
प्रेम के मीठे बोल से, दुश्मन हिलमिल जाय।।
3. हरड़ बहेड़ा आँवला, और बड़न को बोल।
पहले तो कड़वा लगे, पीछे होत अमोल।।
4. मुख से जब भी बोल तू, कड़वे बोल न बोल।
भक्ति भाव में लीन हो, मन की आँखे खोल
5. ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आप भी शीतल होय।।